नमो नमो निम्मलदंसणस्स

बाल ब्रह्मचारी श्री नेमिनाथाय नम:

पूज्य आनन्द-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर-गुरूभ्यो नम:

आगम-४१/२

पिंडनिर्युक्ति

आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद

अनुवादक एवं सम्पादक

आगम दीवाकर मुनि दीपरत्नसागरजी

[M.Com. M.Ed. Ph.D. श्रुत महर्षि]

'आगम' हिन्दी-अनुवाद-श्रेणी पुष्प-४१/२

आगमसूत्र-४१/२- 'पिंडनिर्युक्ति'

मूलसूत्र-२/२- हिन्दी अनुवाद

कहां क्या देखे ?

क्रम	विषय	पृष्ठ	क्रम	विषय	पृष्ठ
१	प्रस्तावना- गाथा	०५	६	संयोजना दोष	५३
२	पिंड- स्वरूप तथा भेद	०५	७	प्रमाण दोष	५३
३	उद्गम दोष	१०	८	अंगार एवं धूम्र दोष	५४
४	उत्पादना दोष	३२	९	कारण दोष	५४
५	एषणा दोष	४२	१०	उपसंहार	५५

४५ आगम वर्गीकरण						
क्रम	आगम का नाम	सूत्र		क्रम	आगम का नाम	सूत्र
०१	आचार	अंगसूत्र-१		२५	आतुरप्रत्याख्यान	पयन्नासूत्र-२
०२	सूत्रकृत्	अंगसूत्र-२		२६	महाप्रत्याख्यान	पयन्नासूत्र-३
०३	स्थान	अंगसूत्र-३		२७	भक्तपरिज्ञा	पयन्नासूत्र-४
०४	समवाय	अंगसूत्र-४		२८	तंदुलवैचारिक	पयन्नासूत्र-५
०५	भगवती	अंगसूत्र-५		२९	संस्तारक	पयन्नासूत्र-६
०६	ज्ञाताधर्मकथा	अंगसूत्र-६		३०.१	गच्छाचार	पयन्नासूत्र-७
०७	उपासकदशा	अंगसूत्र-७		३०.२	चन्द्रवेध्यक	पयन्नासूत्र-७
०८	अंतकृत् दशा	अंगसूत्र-८		३१	गणिविद्या	पयन्नासूत्र-८
०९	अनुत्तरोपपातिकदशा	अंगसूत्र-९		३२	देवेन्द्रस्तव	पयन्नासूत्र-९
१०	प्रश्नव्याकरणदशा	अंगसूत्र-१०		३३	वीरस्तव	पयन्नासूत्र-१०
११	विपाकश्रुत	अंगसूत्र-११		३४	निशीथ	छेदसूत्र-१
१२	औपपातिक	उपांगसूत्र-१		३५	बृहत्कल्प	छेदसूत्र-२
१३	राजप्रश्निय	उपांगसूत्र-२		३६	व्यवहार	छेदसूत्र-३
१४	जीवाजीवाभिगम	उपांगसूत्र-३		३७	दशाश्रुतस्कन्ध	छेदसूत्र-४
१५	प्रज्ञापना	उपांगसूत्र-४		३८	जीतकल्प	छेदसूत्र-५
१६	सूर्यप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-५		३९	महानिशीथ	छेदसूत्र-६
१७	चन्द्रप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-६		४०	आवश्यक	मूलसूत्र-१
१८	जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-७		४१.१	ओघनिर्युक्ति	मूलसूत्र-२
१९	निरयावलिका	उपांगसूत्र-८		४१.२	पिंडनिर्युक्ति	मूलसूत्र-२
२०	कल्पवतंसिका	उपांगसूत्र-९		४२	दशवैकालिक	मूलसूत्र-३
२१	पुष्पिका	उपांगसूत्र-१०		४३	उत्तराध्ययन	मूलसूत्र-४
२२	पुष्पचूलिका	उपांगसूत्र-११		४४	नन्दी	चूलिकासूत्र-१
२३	वृष्णिदशा	उपांगसूत्र-१२		४५	अनुयोगद्वार	चूलिकासूत्र-२
२४	चतु:शरण	पयन्नासूत्र-१		---	----------	-----

मुनि दीपरत्नसागरजी प्रकाशित साहित्य

आगम साहित्य			आगम साहित्य		
क्र	साहित्य नाम	बूक्स	क्रम	साहित्य नाम	बूक्स
1	मूल आगम साहित्य:-	147	6	आगम अन्य साहित्य:-	10
	-1- आगमसुत्ताणि-मूलं print	[49]		-1- આગમ કથાનુયોગ	06
	-2- आगमसुत्ताणि-मूलं Net	[45]		-2- आगम संबंधी साहित्य	02
	-3- आगममञ्जूषा (मूल प्रत)	[53]		-3- ऋषिभाषित सूत्राणि	01
2	आगम अनुवाद साहित्य:-	165		-4- आगमिय सूक्तावली	01
	-1- આગમસૂત્ર ગુજરાતી અનુવાદ	[47]		आगम साहित्य- कुल पुस्तक	516
	-2- आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद Net	[47]			
	-3- AagamSootra English Trans.	[11]			
	-4- આગમસૂત્ર સટીક ગુજરાતી અનુવાદ	[48]			
	-5- आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद print	[12]		अन्य साहित्य:-	
3	आगम विवेचन साहित्य:-	171	1	તત્ત્વાભ્યાસ સાહિત્ય-	13
	-1- आगमसूत्र सटीकं	[46]	2	સૂત્રાભ્યાસ સાહિત્ય-	06
	-2- आगमसूत्राणि सटीकं प्रताकार-1	[51]	3	વ્યાકરણ સાહિત્ય-	05
	-3- आगमसूत्राणि सटीकं प्रताकार-2	[09]	4	વ્યાખ્યાન સાહિત્ય-	04
	-4- आगम चूर्णि साहित्य	[09]	5	જિનભક્તિ સાહિત્ય-	09
	-5- सवृत्तिक आगमसूत्राणि-1	[40]	6	વિધિ સાહિત્ય-	04
	-6- सवृत्तिक आगमसूत्राणि-2	[08]	7	આરાધના સાહિત્ય	03
	-7- सचूर्णिक आगमसुत्ताणि	[08]	8	પરિચય સાહિત્ય-	04
4	आगम कोष साहित्य:-	14	9	પૂજન સાહિત્ય-	02
	-1- आगम सद्दकोसो	[04]	10	તીર્થંકર સંક્ષિપ્ત દર્શન	25
	-2- आगम कहाकोसो	[01]	11	પ્રકીર્ણ સાહિત્ય-	05
	-3- आगम-सागर-कोष:	[05]	12	દીપરત્નસાગરના લઘુશોધનિબંધ	05
	-4- आगम-शब्दादि-संग्रह (प्रा-सं-गु)	[04]		આગમ સિવાયનું સાહિત્ય કૂલ પુસ્તક	85
5	आगम अनुक्रम साहित्य:-	09			
	-1- આગમ વિષયાનુક્રમ- (મૂળ)	02		1-आगम साहित्य (कुल पुस्तक)	516
	-2- आगम विषयानुक्रम (सटीकं)	04		2-आगमेतर साहित्य (कुल	085
	-3- आगम सूत्र-गाथा अनुक्रम	03		दीपरत्नसागरजी के कुल प्रकाशन	601

મુનિ દીપરત્નસાગરનું સાહિત્ય

1	મુનિ દીપરત્નસાગરનું આગમ સાહિત્ય	[કુલ પુસ્તક 516]	તેના કુલ પાના [98,300]
2	મુનિ દીપરત્નસાગરનું અન્ય સાહિત્ય	[કુલ પુસ્તક 85]	તેના કુલ પાના [09,270]
3	મુનિ દીપરત્નસાગર સંકલિત 'તત્ત્વાર્થસૂત્ર'ની વિશિષ્ટ DVD		તેના કુલ પાના [27,930]

અમારા પ્રકાશનો કુલ ૬૦૧ + વિશિષ્ટ DVD કૂલ પાના 1,35,500

[४१/२] पिंडनिर्युक्ति
मूलसूत्र-२/१- हिन्दी अनुवाद

मोक्ष की प्राप्ति के लिए संयम जरुरी है । संयम साधना मनुष्य देह से होती है । शरीर टिकाए रखने के लिए आहार जरुरी है । यह आहार शुद्धि या निर्दोष आहार के लिए 'दसवेयालियं' सूत्र में पाँचवा पिंड़ैषणा नामक अध्ययन है । उस पर श्री भद्रबाहुस्वामी की रची हुई पिंड़निज्जुत्ति है । जिसमें भाष्य गाथा भी है और पू. मलयगीरी महाराज की टीका भी है ।

(हमने करीबन १३५ अंक पर्यंत की निर्युक्ति – भाष्य के अक्षरशः अनुवाद के बाद महसूस किया कि, साधु-साध्वी को प्रत्यक्ष और नितांत जरुरी ऐसे इस आगम का गाथाबद्ध अनुवाद करने की बजाय उपयोगिता मूल्य ज्यादा प्रतीत हो उस प्रकार से आवश्यकता के अनुसार थोड़ा विशेष सम्पादन-संकलन करके और जरुरत के अनुसार वृत्ति-टीका का सहारा लेकर यदि अनुवाद किया जाए तो विशेष आवकार्य होगा । इसलिए गाथाबद्ध अनुवाद न करते हुए विशिष्ट पदच्छेद के रूप में अनुवाद दिया है ।) ***क्षमायाचना सह – मुनि दीपरत्नसागर ।***

सूत्र – १-१४

पिंड़ यानि समूह । वो चार प्रकार के – नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव । यहाँ संयम आदि भावपिंड़ उपकारक द्रव्यपिंड़ है । द्रव्यपिंड़ के द्वारा भावपिंड़ की साधना की जाती है । द्रव्यपिंड़ तीन प्रकार के हैं । आहार, शय्या, उपधि । इस ग्रंथ में मुख्यतया आहारपिंड़ के बारे में सोचना है । पिंड़ शुद्धि आठ प्रकार से सोचनी है । उद्गम, उत्पादना, एषणा, संयोजना, प्रमाण, अंगार, धूम्र और कारण । उद्गम – यानि आहार की उत्पत्ति । उससे पैदा होनेवाले दोष उद्गमादि दोष कहलाते हैं, वो आधाकर्मादि सोलह प्रकार से होती है, यह दोष गृहस्थ के द्वारा उत्पन्न होते हैं । उत्पादना यानि आहार को पाना उसमें होनेवाले दोष उत्पादन आदि दोष कहलाते हैं, वो धात्री आदि सोलह प्रकार से होती है । यह दोष साधु के द्वारा उत्पन्न होते हैं । एषणा के तीन प्रकार हैं । गवेषणा एषणा, ग्रहण एषणा और ग्रास एषणा ।

गवेषणा एषणा के आठ प्रकार – प्रमाण, काल, आवश्यक, संघाट्टक, उपकरण, मात्रक, काऊस्सग्ग, योग और अपवाद । प्रमाण – भिक्षा के लिए गृहस्थ के घर दो बार जाना । अकाले ठल्ला की शंका हुई हो तो उस समय पानी ले । भिक्षा के समय गोचरी पानी ले । काल – जिस गाँव में भिक्षा का जो समय हुआ हो तब जाए । आवश्यक – ठल्ला मात्रादि की शंका दूर करके भिक्षा के लिए जाए । उपाश्रय के बाहर नीकलते ही 'आवस्सहि' कहे । संघाट्टक दो साधु साथ में भिक्षा के लिए आए । उपकरण – उत्सर्ग से सभी उपकरण साथ लेकर भिक्षा के लिए जाए । सभी उपकरण साथ लेकर भिक्षा के लिए जाना समर्थ न हो तो पात्रा, पड़ला, रजोहरण, दो वस्त्र और दांड़ा लेकर गोचरी जाए । मात्रक – पात्र के साथ दूसरा मात्रक लेकर भिक्षा के लिए जाए । काऊस्सग्ग करके आदेश माँगे । 'संदिसह' आचार्य कहे, 'लाभ' साधु कहे (कहं लेसु) आचार्य कहे (जहा गहियं पुव्वसाहूहिं) योग – फिर कहे कि 'आवस्सियाए जस्स जोगो' जो-जो संयम को जरुरी होगा वो ग्रहण करूँगा ।

गवेषणा दो प्रकार की है । एक द्रव्य गवेषणा, दूसरी भाव गवेषणा । द्रव्य गवेषणा – वसंतपुर नाम के नगर में जितशत्रु राजा को धारिणी नाम की रानी थी । एक बार चित्रसभा में गई, उसमें सुवर्ण पीठवाला मृग देखा । वो रानी गर्भवती थी, इसलिए उसे सुवर्ण पीठवाले मृग का माँस खाने का दोहलो (ईच्छा) हुई । वो ईच्छा पूरी न होने से रानी का शरीर सूखने लगा । रानी को कमझोर होते देखकर राजाने पूछा कि, तुम क्यों कमझोर होती जाती हो ? तुम्हें क्या दुःख है ? रानी ने सुवर्ण पीठवाले मृग का माँस खाने की ईच्छा की बात कही । राजा ने अपने पुरुषों को सुवर्णमृग को पकड़कर लाने का हूकम किया । पुरुषोंने सोचा कि सुवर्णमृग को श्रीपर्णी फल काफी प्रिय होते हैं, लेकिन अभी उस फल की मौसम नहीं है । इसलिए नकली फल बनाकर जंगल में गए । वहाँ उस

नकली फल के ढ़ेर करके पेड़ के नीचे रख दिए । मृग ने वो फल देखे और अपने नायक को बात की, सभी वहाँ आए । नायक ने वो फल देखे और सभी मृग को कहा कि, किसी धूर्त ने हमें पकड़ने के लिए यह किया है । क्योंकि अभी इन फलों की मौसम नहीं है । इसलिए वो फल खाने कोई न जाए । इस प्रकार नायक की बात सुनकर कुछ मृग वो फल खाने के लिए न गए । कुछ मृग नायक की बात की परवा किए बिना फल खाने के लिए गए जैसे ही फल खाने लगे वहीं राजा के पुरुषोंने उत मृग को पकड़ लिया । इसलिए उन मृग में से कुछ बाँधे गए और कुछ मर गए । जिन मृग ने वो फल नहीं खाए वो सुखी हो गए, ईच्छा के अनुसार वन में विचरण करने लगे ।

भाव गवेषणा – किसी महोत्सव पर कुछ साधु आए थे । किसी श्रावक ने या भद्रिकने साधुओं के लिए (आधाकर्मी) भोजन तैयार करवाया और दूसरे लोगों को बुलाकर भोजन देने लगे । उनके मन में था कि, 'यह देख कर साधु आहार लेने आएंगे ।' आचार्य को इस बात का किसी भी प्रकार पता चल गया । इसलिए साधुओं को कहा कि 'वहाँ गोचरी लेने के लिए मत जाना । क्योंकि वह आहार आधाकर्मी है ।' कुछ साधु वहाँ आहार लेने के लिए न गए, लेकिन किसी कुल में से गोचरी ले आए । जब कुछ साधु ने आचार्य के वचन की परवा न की और वह आहार लाकर खाया । जिन साधुओंने आचार्य भगवंत का वचन सुनकर वह आधाकर्मी आहार न लिया, वो साधु तीर्थंकर भगवंत की आज्ञा के आराधक बने और परलोक में महासुख पाया । जब कि जिन साधुओं ने आधाकर्मी आहार खाया वो साधु श्री जिनेश्वर भगवंत की आज्ञा के विराधक बने और संसार का विस्तार किया । इसलिए साधुओं को निर्दोष आर पानी की गवेषणा करनी चाहिए और दोषित आहार पानी आदि का त्याग करना चाहिए । क्योंकि निर्दोष आहार आदि के ग्रहण से संसार का शीघ्र अन्त होता है । ग्रहण एषणा दो प्रकार से । एक द्रव्य, दूसरी भाव । द्रव्य ग्रहण एषणा – एक जंगल में कुछ बंदर रहते थे । एक दिन गर्मी में फल, पान आदि सूखे देखकर बड़े बंदर ने सोचा कि दूसरे जंगल में जाए । दूसरे अच्छे जंगल की जाँच करने के लिए अलग-अलग दिशा में कुछ बंदरों को भेजा । उस जंगल में एक बड़ा द्रह था । यह देखकर बंदर खुश हो गए । बड़े बंदर ने उस द्रह की चारों ओर जाँच-पड़ताल की, तो उस द्रह में जाने के पाँव के निशान दिखते थे, लेकिन बाहर आने के निशान नहीं दिखते थे । इसलिए बड़े बंदर ने सभी बंदरों को इकट्ठा करके कहा कि, इस द्रह में सावधान रहना । किनारे से या द्रह में जाकर पानी मत पीना, लीकन पोली नली के द्वारा पानी पीना । जो बंदरने बड़े बंदर के कहने के अनुसार किया वो सुखी हुए । और जो द्रह में जाकर पानी पीने के लिए गए वो मर गए । इस प्रकार आचार्य भगवंत महोत्सव आदि में आधाकर्मी, उद्देशिक आदि दोषवाले आहार आदि का त्याग करवाते हैं और शुद्ध आहार ग्रहण करवाते हैं । जो साधु आचार्य भगवंत के कहने के अनुसार व्यवहार करते हैं, वो थोड़े ही समय में सभी कर्मो का क्षय करते हैं । जो आचार्य भगवंत के वचन के अनुसार व्यवहार नहीं करते वो कईं भव में जन्म, जरा, मरण आदि के दुःख पाते हैं ।

भाव ग्रहण एषणा के ग्यारह प्रकार – स्थान, दायक, गमन, ग्रहण, आगमन, प्राप्त, परवृत, पतित, गुरुक, त्रिविध भाव । स्थान – तीन प्रकार के आत्म ऊपघातिक, प्रवचन ऊपघातिक, संयम ऊपघातिक । दायक – आठ वर्ष से कम उम्र का बच्चा, वृद्ध, नौकर, नपुंसक, पागल, क्रोधित आदि से भिक्षा ग्रहण मत करना । गमन – भिक्षा देनेवाले, भिक्षा लेने के लिए भीतर जाए, तो उस पर नीचे की जमीं एवं आसपास भी न देखे । यदि वो जाते हुए पृथ्वी, पानी, अग्नि आदि का संघट्टा करता हो तो भिक्षा ग्रहण मत करना । ग्रहण – छोटा, नीचा द्वार हो, जहाँ अच्छी प्रकार देख सकते न हो, अलमारी बंध हो, दरवाजा बंध हो, कईं लोग आते-जाते हो, बैलगाड़ी आदि पड़े हो, वहाँ भिक्षा ग्रहण मत करना । आगमन – भिक्षा लेकर आनेवाले गृहस्थ पृथ्वी आदि की विराधना करते हुए आ रहे हो तो भिक्षा ग्रहण मत करना । प्राप्त – कच्चा पानी, संसक्त या गीला हो तो भिक्षा ग्रहण नहीं करनी चाहिए । परावर्त – आहार आदि दूसरे बरतन में ड़ाले तो उस बरतन को कच्चा पानी आदि लगा हो तो उस बरतन में से आहार ग्रहण नहीं करना चाहिए । पतित आहार पात्र में ग्रहण करने के बाद जाँच करनी चाहिए । योगवाला पिंड़ है या स्वाभाविक, वो देखो । गुरुक – बड़े या भारी भाजन से भिक्षा ग्रहण नहीं करनी चाहिए । त्रिविध – काल तीन

प्रकार से । ग्रीष्म, हेमंत और वर्षाकाल । एवं देनेवाले तीन प्रकार से – स्त्री, पुरुष और नपुंसक । उन हरएक में तरुण, मध्यम और स्थविर । नपुंसक शीत होते हैं, स्त्री उष्मावाली होती है और पुरुष शीतोष्ण होते हैं । उनमें पुरःकर्म, उदकार्द्र, सस्निग्ध तीन होते हैं । वो हरएक सचित्त, अचित्त और मिश्र तीन प्रकार से हैं । पुरःकर्म और उदकार्द्र में भिक्षा ग्रहण नहीं करनी चाहिए । सस्निग्ध में यानी मिश्र और सचित्त पानीवाले हाथ हों, उस हाथ की ऊंगलियाँ, रेखा और हथेली यदि सूखे हो तो भिक्षा ग्रहण किया जाए । भाव – लौकिक और लोकोत्तर, दोनों में प्रशस्त और अप्रशस्त ।

ग्रास एषणा – बयालीस दोष रहित शुद्ध आहार ग्रहण करके, जाँच करके, विधिवत् उपाश्रय में आकर, विधिवत् गोचरी की आलोचना करे । फिर मुहूर्त्त तक स्वाध्याय आदि करके, आचार्य, प्राघुर्णक, तपस्वी, बाल, वृद्ध आदि को निमंत्रणा करके आसक्ति बिना विधिवत् आहार खाए ।

आहार शुद्ध है या नहीं उसकी जाँच करे वो गवेषणा एषणा । उसमें दोष न लगे उस प्रकार आहार ग्रहण करना यानि ग्रहण एषणा । और दोष न लगे उस प्रकार से खाए उसे ग्रास एषणा कहते हैं ।

संयोजना – वो द्रव्य संयोजना और भाव संयोजना ऐसे दो प्रकार से हैं । यानि उद्गम उत्पादन आदि दोष कौन-कौन से हैं, वो जानकर टालने की गवेषणा करे, आहार ग्रहण करने के बाद संयोजन आदि दोष न लगे ऐसे आहार खाए वो उद्देश है । प्रमाण–आहार कितना खाना उसका प्रमाण । अंगार–अच्छे आहार की या आहार बनाने वाले की प्रशंसा करना । धुम्र–बूरे आहार की या आहार बनानेवाले की नींदा करना । कारण–किस कारण से आहार खाना और किस कारण से न खाए ? पिंड़ – निर्युक्ति के यह आठ द्वार हैं । उसका क्रमसर बयान किया जाएगा ।

सूत्र – १५

द्रव्यपिंड़ तीन प्रकार का है । सचित्त, मिश्र और अचित्त । उन हरएक के नौ-नौ प्रकार हैं सचित्त के नौ प्रकार – पृथ्वीकायपिंड़, अप्कायपिंड़, तेऊकायपिंड़, वायुकायपिंड़, वनस्पतिकायपिंड़, बेइन्द्रियपिंड़, तेइन्द्रिय पिंड़, चऊरिन्द्रियपिंड़ और पंचेन्द्रियपिंड़ (मिश्र में और अचित्त में भी नौ भेद समझे ।)

सूत्र – १६-२२

पृथ्वीकाय पिंड़ – सचित्त, मिश्र, अचित्त । सचित्त दो प्रकार से – निश्चय से सचित्त और व्यवहार से सचित्त। निश्चय से सचित्त – रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा आदि पृथ्वी, हिमवंत आदि महापर्वत का मध्य हिस्सा आदि । व्यवहार से सचित्त – जहाँ गोमय, गोबर आदि न पड़े हो, सूर्य की गर्मी या मनुष्य आदि का आना-जाना न हो ऐसे जंगल आदि। मिश्र पृथ्वीकाय – क्षीर वृक्ष, वड़, उदुम्बर आदि पेड़ के नीचे का हिस्सा यानि वृक्ष के नीचे का छाँववाला बैठने का हिस्सा मिश्र पृथ्वीकाय होता है । हल चलाई हुई जमीं आर्द्र हो वहाँ तक, गिली मिट्टी एक, दो, तीन प्रहर तक मिश्र होती है । ईंधन ज्यादा हो पृथ्वी कम हो तो एक प्रहर तक मिश्र । ईंधन कम हो पृथ्वी ज्यादा हो तो तीन प्रहर तक मिश्र । दोनों समान हो तो दो प्रहर तक मिश्र । अचित्त, पृथ्वीकाय, शीतशस्त्र, उष्णशस्त्र, तेल, क्षार, बकरी की लींड़ी, अग्नि, लवण, काँजी, घी आदि से वध की गई पृथ्वी अचित्त होती है । अचित्त पृथ्वी का उपयोग – लूता स्फोट से हुए दाह के शमन के लिए शेक करने के लिए, सर्पदंश पर शेक करने के लिए, अचित्त नमक का, एवं बीमारी आदि में और काऊस्सग्ग करने के लिए, बैठना, उठना, चलना आदि काम में उसका उपयोग होता है ।

सूत्र – २३-४५

अप्काय पिंड़ – सचित्त मिश्र, अचित्त । सचित्त दो प्रकार से निश्चय से और व्यवहार से । निश्चय से सचित्त – धनोदधि आदि, द्रह-सागर के बीच का हिस्सा आदि का पानी । व्यवहार से सचित्त । कुआ, तालाब, बारिस आदि का पानी । मिश्र अप्काय – अच्छी प्रकार न ऊबाला हुआ पानी, जब तक तीन ऊबाल न आए तब तक मिश्र । बारिस का पानी पहली बार भूमि पर गिरते ही मिश्र होता है । अचित्त अप्काय – तीन ऊबाल आया हुआ

पानी, एवं दूसरे शस्त्र आदि से वध किया गया पानी अचित्त हो जाता है । अचित्त अप्काय का उपयोग – शेक करना, तृषा छिपाना, हाथ, पाँव, वस्त्र, पात्र आदि धोने में उपयोग होता है । **(यहाँ मूल निर्युक्ति में वस्त्र किस प्रकार धोना, उसमें वड़ील आदि के कपड़े, क्रम की देखभाल, पानी कैसे लेना आदि विधि भी है जो ओघनिर्युक्ति में भी आई ही है । इसलिए उस विशेषता यहाँ दर्ज नहीं की है ।)**

सूत्र – ४६-४८

अग्निकाय पिंड़ – सचित्त, मिश्र, अचित्त । सचित्त दो प्रकार से – निश्चय से और व्यवहार से । निश्चय से ईंट के नीभाड़े के बीच का हिस्सा एवं बिजली आदि का अग्नि । व्यवहार से – अंगारे आदि का अग्नि । मिश्र अग्निकाय – तणखा मुर्मुरादि का अग्नि । अचित्त अग्नि – चावल, कुर, सब्जी, ओसामण, ऊबाला हुआ पानी आदि अग्नि से परिपक्व । अचित्त अग्निकाय का उपयोग – ईंट के टुकड़े, भस्म आदि का उपयोग किया जाता है । एवं आहार पानी आदि में उपयोग किया जाता है । अग्निकाय के शरीर दो प्रकार के होते हैं । बद्धेलक और मुक्केलक। बद्धेलक यानि अग्नि के साथ सम्बन्धित हो ऐसे । मुक्केलक अग्नि समान बनकर अलग हो गए हो ऐसे । आहार आदि मुक्केलक अग्निकाय हैं और उसका उपयोग किया जाता है ।

सूत्र – ४९-५७

वायुकाय पिंड़ – सचित्त, मिश्र, अचित्त । सचित्त दो प्रकार से – निश्चय से और व्यवहार से । निश्चय से सचित्त – रत्नप्रभादि पृथ्वी के नीचे वलयाकार में रहा घनवात, तनुवात, काफी शर्दी में जो पवन लगे वो, काफी दुर्दिन में वाता हुआ वायु आदि । व्यवहार से सचित्त – पूरब आदि दिशा का पवन, काफी शर्दी और काफी दुर्दिन रहित लगता पवन । मिश्र – दत्ति आदि में भरा वायु कुछ समय के बाद मिश्र । अचित्त – पाँच प्रकार से । आक्रांत – दलदल आदि दबाने से नीकलता वायु । धंत–मसक आदि का वायु । पीलित धमण आदि का वायु । शरीर, अनुगत, श्वासोच्छ्वास, शरीर में रहा वायु । मिश्र – कुछ समय तक मिश्र फिर सचित्त । अचित्त वायुकाय का उपयोग – अचित्त वायु भरी मसक तैरने के काम में ली जाती है, एवं ग्लान आदि के उपयोग में ली जाती है । अचित्त वायु भरी मसक क्षेत्र से सौ हाथ तक तैरे तब तक अचित्त, दूसरे सौ हाथ तक यानि एक सौ एक वे हाथ से दो सौ हाथ तक मिश्र, दो सौ हाथ के बाद वायु सचित्त हो जाता है । स्निग्ध (वर्षाऋतु), ऋक्ष (शर्दी-गर्मी) काल में जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट अचित्त आदि वायु की पहचान के लिए कोठा ।

काल	अचित्त	मिश्र	सचित्त
उत्कृष्ट स्निग्धकाल	एक प्रहर तक	दूसरे प्रहर तक	दूसरे प्रहर की शुरूआत से
मध्यम स्निग्धकाल	दो प्रहर तक	तीसरे प्रहर तक	चौथे की शुरूआत से
जघन्य स्निग्धकाल	दो प्रहर तक	चार प्रहर तक	पाँचवे की शुरूआत से
जघन्य रूक्षकाल	एक दिन	दूसरे दिन	तीसरे दिन
मध्यम रूक्षकाल	दो दिन	तीसरे दिन	चौथे दिन
उत्कृष्ट रूक्षकाल	तीन दिन	चौथे दिन	पाँचवे दिन

सूत्र – ५८-६२

वनस्पतिकायपिंड़ – सचित्त, मिश्र । सचित्त दो प्रकार से – निश्चय से और व्यवहार से । निश्चय से सचित्त – अनन्तकाय वनस्पति । व्यवहार से सचित्त – प्रत्येक वनस्पति । मिश्र – मुर्झाये हुए फल, पत्र, पुष्प आदि, साफ न किया हुआ आँटा, खंड़ीत की गई डाँगर आदि । अचित्त–शस्त्र आदि से परिणत वनस्पति । अचित्त वनस्पति का उपयोग संथारो, कपड़े, औषध आदि में उपयोग होता है ।

सूत्र – ६३-६७

बेइन्द्रियपिंड़, तेइन्द्रियपिंड़, चऊरिन्द्रियपिंड़, पंचेन्द्रियपिंड़ यह सभी एक साथ अपने अपने समुह रूप हो

तब पिंड़ कहलाते हैं । वो भी सचित्त, मिश्र और अचित्त तीन प्रकार से होते हैं । अचित्त का प्रयोजन । दो इन्द्रिय – चंदनक – शंख – छीप आदि स्थापना, औषध आदि कार्य में । तेइन्द्रिय – उधेही की मिट्टी आदि । चऊरिन्द्रिय – शरीर, आरोग्य के लिए, उल्टी आदि कार्य में मक्खी की अधार आदि । पंचेन्द्रिय पिंड़ – चार प्रकार से नारकी, तिर्यंच, मानव और देव । नारकी का व्यवहार किसी भी प्रकार नहीं हो सकता । तिर्यंच पंचेन्द्रिय का उपयोग – चमड़ा, हड्डियाँ, बाल, दाँत, नाखून, रोम, शींग, विष्टा, मूत्र आदि कारण के अवसर पर उपयोग किया जाता है । एवं वस्त्र, दूध, दहीं, घी आदि का उपयोग किया जाता है । मानव का उपयोग सचित्त मानव का उपयोग दीक्षा देने में एवं मार्ग आदि पूछने के लिए । अचित्त मानव की खोपरी वेश परिवर्तन आदि करने के काम में आए, एवं घिसकर उपद्रव शान्त करने के लिए । देव का उपयोग – तपस्वी या आचार्य अपनी मृत्यु आदि पूछने के लिए, एवं शुभाशुभ पूछने के लिए या संघ सम्बन्धी किसी कार्य के लिए करे ।

सूत्र – ६८-८३

भावपिंड़ दो प्रकार के हैं । १. प्रशस्त, २. अप्रशस्त । प्रशस्त – एक प्रकार से दश प्रकार तक हैं । प्रशस्त भावपिंड़ एक प्रकार से यानि संयम । दो प्रकार यानि ज्ञान और चारित्र । तीन प्रकार यानि ज्ञान, दर्शन और चारित्र । चार प्रकार यानि ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप । पाँच प्रकार यानि – १. प्राणातिपात विरमण, २. मृषावाद विरमण, ३. अदत्तादान विरमण, ४. मैथुन विरमण और ५. परिग्रह विरमण । छ प्रकार से ऊपर के अनुसार पाँच और छह रात्रि भोजन विरमण । सात प्रकार से – यानि सात पिंड़ैषणा, सात पाणैषणा, सात अवग्रह प्रतिमा । इसमें सात पिंड़ैषणा, वो संसृष्ट, असंसृष्ट, उद्धुत, अल्पलेप, अवगृहीत, प्रगृहीत, संसृष्ट – हाथ और पात्र खरड़ित, असंसृष्ट – हाथ और पात्र न खरड़ित, उद्धुत – कटोरे में नीकाला गया, अल्पलेप – पके हुए चने आदि । अवगृहीत – भोजन के लिए लिया गया, प्रग्रहित – हाथ में लिया हुआ नीवाला, उज्झितधर्म फेंकने योग्य ।

सात अवग्रह प्रतिमा यानि – वसति सम्बन्धी ग्रहण करने में अलग-अलग अभिग्रह रखना । जैसे कि – इस प्रकार का उपाश्रय ग्रहण करूँगा । इस प्रकार पहले सोचे हुए उपाश्रय याच कर उतरे वो । मैं दूसरों के लिए वसति माँगूंगा और दूसरों ने ग्रहण की हुई वसति में रहूँगा नहीं । मैं दूसरों के लिए अवग्रह नहीं माँगूंगा लेकिन दूसरों के अवग्रह में रहूँगा । मैं मेरा अवग्रह माँगूंगा लेकिन दूसरों के लिए नहीं माँगूंगा, मैं जिनके पास अवग्रह माँगूंगा उसका ही संस्तारक ग्रहण करूँगा, वरना खड़े-खड़े या उत्कटुक आसन पर रहूँगा । ऊपर की छठ्ठी के अनुसार ही विशेष इतना की शिलादि जिस प्रकार संस्तारक होगा उसका उसी के अनुसार उपयोग करूँगा, दूसरा नहीं, आठ प्रकार यानि आठ प्रवचन माता । पाँच समिति और तीन गुप्ति । नौ प्रकार से – नौ ब्रह्मचर्य की वाड़ । दश प्रकार से – क्षमा आदि दश प्रकार का यतिधर्म । इस दश प्रकार का प्रशस्त भावपिंड़ श्री तीर्थंकर भगवंत ने बताया है ।

अप्रशस्त भावपिंड़ एक तरीका यानि असंयम दो प्रकार से यानि – अज्ञान और अविरति । तीन प्रकार से यानि – मिथ्यात्व, अज्ञान और अविरति । चार प्रकार से यानि – क्रोध, मान, माया और लालच । पाँच प्रकार से यानि – प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन और परिग्रह । छ प्रकार से यानि पृथ्वीकाय, अप्काय, तेऊकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय की विराधना । सात प्रकार से यानि – आयु बिना सात कर्म के बँध के जवाबदार अध्यवसाय । आठ प्रकार से यानि – आठ कर्म के बँध के कारणभूत अध्यवसाय । नौ प्रकार से यानि – ब्रह्मचर्य की नौ गुप्ति का पालन न करना । दश प्रकार से यानि – क्षमा आदि दश यतिधर्म का पालन न करना ।

अप्रशस्त और प्रशस्त भावपिंड़ जिस प्रकार के भावपिंड़ से ज्ञानवरणादि कर्म का क्षय हो आत्मा कर्म से मुक्त होता जाए उसे प्रशस्त भावपिंड़ समझना । यहाँ एकादि प्रकारो को पिंड़ कैसे कहते हैं? इस शंका के समाधान में समझो कि उस प्रकार को आश्रित करके उसके अविभाग्य अंश समूह को पिंड़ कहते हैं । या इन सबसे परिणाम के भाव से जीव को शुभाशुभ कर्मपिंड़ बाँधा जाने से उसे भावपिंड़ कहते हैं । यहाँ हम प्रशस्त भावपिंड़ और शुद्ध अचित्त द्रव्यपिंड़ से कार्य है, क्योंकि मोक्ष के अर्थी जीव को आठ प्रकार की कर्म समाने बेड़ियाँ तोड़ने के लिए प्रशस्त भावपिंड़ जरुरी है । उसमें अचित्त द्रव्यपिंड़ सहायक बनता है, इसलिए वो ज्यादा जरुरी है ।

सूत्र – ८४-१००

मुमुक्षु के जीवन में प्राप्त करने के लायक केल मोक्ष ही है, उस मोक्ष के कारण सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्र हैं और उस मोक्ष के कारण समान दर्शन, ज्ञान और चारित्र के कारण शुद्ध आहार हैं । आहार बिना चारित्र शरीर टीक नहीं सकता । उद्गम आदि दोषवाला आहार चारित्र को नष्ट करनेवाला है । शुद्ध आहार मोक्ष के कारण समान है, जैसे तंतु (सूती) वस्त्र के कारण है और तंतु के कारण रूई है, यानि रूई में से सूत बनता है और सूत से वस्त्र बूने जाते हैं, उसी प्रकार शुद्ध आहार से दर्शन, ज्ञान, चारित्र की शुद्धि हो और दर्शन, ज्ञान, चारित्र की शुद्धि से जीव का मोक्ष हो । इसके लिए साधु को उद्गम उत्पादन आदि दोष रहित आहार ग्रहण करना चाहिए ।

सूत्र – १०१-१०८

उसमें उद्गम के सोलह दोष हैं । वो इस प्रकार – आधाकर्म-साधु के लिए हो जो आहार आदि बनाया गया हो वो । उद्देशिक – साधु आदि सभी भिक्षाचर को उद्देशकर आहार आदि किया गया हो वो । पूतिकर्म – शुद्ध आहार के साथ अशुद्ध आहार मिलाया गया हो । मिश्र-शुरू से गृहस्थ और साधु दोनों के लिए तैयार किया गया हो वो । स्थापना – साधु के लिए आहार आदि रहने दे वो । प्राभृतिका – साधु को वहोराने का फायदा हो उस आशय से शादी आदि अवसर लेना वो । प्रादुष्करण – साधु को वहोराने के लिए अंधेरा दूर करने के लिए खिड़की, दरवाजा खोलना या बिजली, दिया आदि से उजाला करना वो । क्रीत – साधु को वहोराने के लिए बिक्री में खरीदना । प्रामित्य साधु को वहोराने के लिए उधार लाना ।

परिवर्तित – साधु को वहोराने के लिए चीज को उलट-सूलट करना वो । अभ्याहृत् – साधु को वहोराने के लिए सामने ले जाए वो । उद्भिन्न – साधु को वहोराने के लिए मिट्टी आदि सील लगाया हो तो उसे तोड़ देना । मालाहृत् – कोटड़ी या मजले पर से लाकर देना वो । आछेद्य – पुत्र, नौकर आदि के पास से जबरदस्ती लूँटकर देना वो । अनिसृष्ट – अनेक मालिक की वस्तु दूसरों की परवानगी बिना एक पुरुष दे वो, अध्यपूरक – अपने लिए रसोई की शुरूआत करने के बाद साधु के लिए उसमें ज्यादा ड़ाला हुआ देना ।यहाँ निर्युक्ति में आनेवाला जितशत्रु राजा का दृष्टांत, कुछ विशेष बातें, एषणा का अर्थ एवं एषणा के प्रकार दर्शन आदि शुद्धि और उसके लिए आहार शुद्धि की जरुरत आदि बातें इसके पहले कही गई हैं । इसलिए उसको यहाँ दौहराया नहीं है ।

सूत्र – १०९

आधाकर्म के द्वार – आधाकर्म के एकार्थिक नाम, ऐसे कर्म कब होंगे ? आधाकर्म का स्वरूप और परपक्ष, स्वपक्ष एवं स्वपक्ष में अतिचार आदि प्रकार ।

सूत्र – ११०-११६

आधाकर्म के एकार्थक नाम आधाकर्म, अधःकर्म आत्मघ्न और आत्मकर्म । आधाकर्म – यानि साधु को मैं दूँगा ऐसा मन में संकल्प रखकर उनके लिए छ काय जीव की विराधना जिसमें होती है ऐसा आहार बनाने कि क्रिया । अधःकर्म –यानि आधाकर्म दोषवाले आहार ग्रहण करनेवाले साधु को संयम से नीचे ले जाए, शुभ लेश्या से नीचे गिराए, या नरकगति में ले जाए इसलिए अधःकर्म । आत्मघ्न – यानि साधु के चारित्र समान आत्मा को नष्ट करनेवाला । आत्मकर्म यानि अशुभकर्म का बँध हो । आधाकर्म ग्रहण करने से जो कि साधु खुद छकाय जीव का वध नहीं करता, लेकिन ऐसा आहार ग्रहण करने से अनुमोदना के द्वारा छकाय जीववध के पाप का भागी होता है

सूत्र – ११७-२४०

संयमस्थान – कंड़क संयमश्रेणी, लेश्या एवं शाता वेदनीय आदि के समान शुभ प्रकृति में विशुद्ध विशुद्ध स्थान में रहे साधु को आधाकर्मी आहार जिस प्रकार से नीचे के स्थान पर ले जाता है, उस कारण से वो अधःकर्म कहलाता है । संयम स्थान का स्वरूप देशविरति समान पाँचवे गुण-स्थान में रहे सर्व उत्कृष्ट विशुद्ध स्थानवाले जीव से सर्व विरति रूप छठ्ठे गुण स्थान पर रहे सबसे जघन्य विशुद्ध स्थानवाले जीव की विशुद्धि अनन्तगुण अधिक है

यानि सबसे नीचे के विशुद्धि स्थान में रहा साधु, सबसे ऊपर विशुद्धि स्थान में रहे श्रावक से अनन्त गुण ज्यादा है । जघन्य ऐसे वो सर्व विरति के विशुद्धि स्थान को केवलज्ञानी की दृष्टि से – बुद्धि से बाँटा जाए और जिसका दूसरा हिस्सा न हो सके ऐसे अविभाज्य हिस्से किए जाए, ऐसे हिस्सों की सर्व गिनती के बारे में सोचा जाए तो, देश विरति के सर्व उत्कृष्ट विशुद्धि स्थान के यदि ऐसे अविभाज्य हिस्से हो उसकी सर्व संख्या को सर्व जीव की जो अनन्त संख्या है, उसका अनन्तवा हिस्सा, उसमें जो संख्या हो उस संख्या के दुगुने किए जाए और जितने संख्या मिले उतने हिस्से सर्व विरति के सर्व जघन्य विशुद्धि स्थान में होते हैं । सर्व विरति गुणस्थान के यह सभी जघन्य विशुद्धि स्थान से दूसरा अनन्त हिस्सा वृद्धिवाला होता है । यानि पहले संयम स्थान में अनन्त हिस्से वृद्धि करे तब दूसरा संयम स्थान आए, उसमें अनन्त हिस्से वृद्धि करने से जो आता है वो तीसरा संयमस्थान, इस प्रकार अनन्त हिस्से वृद्धि तब तक करे जब तक उस स्थान की गिनती एक अंगुल के असंख्यात भागों में रहे प्रदेश की संख्या जितनी बने । अंगुल के असंख्यात भाग के प्रमाण आकाश प्रदेश में रहे प्रदेश की संख्या जितने संयम स्थान को, शास्त्र की परिभाषा में एक कंड़क कहते हैं । एक कंड़क में असंख्यात संयम स्थान का समूह होता है । इस प्रकार हुए प्रथम कंड़क के अंतिम संयम स्थान में जितने अविभाज्य अंश है उसमें असंख्यात भाग वृद्धि करने से जो संख्या बने उतने संख्या का दूसरे कंड़क का पहला स्थान बनता है । उसके बाद उससे दूसरा स्थान अनन्त हिस्सा ज्यादा आए ऐसे अनन्त हिस्से अधिक अनन्त हिस्से अधिक की वृद्धि करने से पूरा कंड़क बने, उसके बाद असंख्यात हिस्से ज्यादा ड़ालने से दूसरे कंड़क का दूसरा स्थान आता है । उसके असंख्यात हिस्से वृद्धि का तीसरा स्थान । इस प्रकार एक-एक कंड़कान्तरित असंख्यात हिस्से, वृद्धिवाले संयम स्थान एक कंड़क के अनुसार बने उसके बाद, संख्यात हिस्से ज्यादा वृद्धि करने से संख्यात हिस्से अधिक का पहला संयमस्थान आता है ।

उसके बाद अनन्त हिस्सा ज्यादा एक कंड़क के अनुसार एक एक असंख्यात हिस्से अधिक का संयमस्थान आए, वो भी कंड़क प्रमाण हो यानि संख्यात हिस्से अधिक का दूसरा संयम स्थान आता है । ऐसे क्रम-क्रम पर बीच में अनन्त हिस्सा अधिक कंड़क उसके बीच असंख्यात हिस्से अधिक स्थान आते हैं । जब संख्यात हिस्से अधिक संयम स्थान की गिनती भी कंड़क प्रमाण बने । उसके बाद संख्यातगुण अधिक पहला संयम स्थान आए उसके बाद कंड़क अंक प्रमाण अनन्त हिस्से वृद्धिवाले संयम स्थान आते हैं । उसके बाद एक असंख्यात हिस्से वृद्धिवाले संयम स्थान आए, ऐसे अनन्त हिस्से अधिक कंड़क के बीच असंख्यात हिस्से अधिकवाले कंड़क प्रमाण बने । उसके बाद पूर्व के क्रम से संख्यात हिस्से अधिक संयम स्थान का कंड़क करना । वो कंड़क पूरा होने के बाद दूसरा संख्यातगुण अधिक का संयमस्थान आता है । उसके बाद अनन्त हिस्से अधिक संयम स्थान के बीच-बीच में कंड़क के अनुसार संख्यात हिस्से अधिक संयमस्थान आता है, उसके बाद तीनों के बीच में कंड़क प्रमाण संख्यात गुण अधिक संयम स्थान आता है, उसके बाद असंख्यात गुण अधिक का दूसरा संयम स्थान आता है । इसी क्रम से चार से अंतरित अनगिनत गुण अधिक के संयम स्थान आते हैं । उसके बाद एक संख्यात हिस्सा अधिक का संयम स्थान आए उस प्रकार से अनन्त हिस्से अंतरित असंख्यात हिस्से अधिक का कंड़क प्रमाण बने, उसके बाद दो के आँतरावाला संख्यात हिस्से अधिक का कंड़क प्रमाण बने । उसके बाद तीन के आँतरावाला संख्यात गुण अधिक का कंड़क प्रमाण बने, उन चारों के आंतरावाला असंख्यात् गुण अधिक का कंड़क प्रमाण बने । उसके बाद अनन्त गुण अधिक का दूसरा संयम स्थान आता है । इस क्रम के अनुसार अनन्त गुण अधिक के स्थान भी कंड़क प्रमाण करे । उसके बाद ऊपर के अनुसार अनन्त हिस्से अधिक का संयम स्थान उसके बीच-बीच में असंख्यात हिस्सा अधिक का उसके बाद दोनों बीच-बीच में संख्यात हिस्से अधिक का, उसके बाद तीन आंतरावाला संख्यात गुण अधिक का और उसके बाद चार आंतरावाला असंख्यात गुण अधिक का कंड़क करे । यानि षट् स्थानक परिपूर्ण बने । ऐसे असंख्यात लोकाकाश प्रदेश प्रमाण षट् स्थानक संयम श्रेणी में बनते हैं । इस प्रकार संयम श्रेणी का स्वरूप शास्त्र में बताया है । आधाकर्मी आहार ग्रहण करनेवाला विशुद्ध संयम स्थान से नीचे गिरते हुए हीन भाव में आने से यावत् रत्नप्रभादि नरकगति की आयु बाँधता है ।

यहाँ शिष्य सवाल करता है कि, आहार तैयार करने से छह कायादि का आरम्भ गृहस्थ करता है, तो उस आरम्भ आदि का ज्ञानावरणादि पापकर्म साधु को आहार ग्रहण करने से क्यों लगे ? क्योंकि एक का किया हुआ कर्म दूसरे में संक्रम नहीं होता । जो कि एक का किया हुआ कर्म दूसरे में संक्रम होता तो क्षपक श्रेणि पर चड़े महात्मा, कृपालु और पूरे जगत के जीव के कर्म को नष्ट करने में समर्थ है; इसलिए सारे प्राणी के ज्ञानावरणादि कर्म को अपनी क्षपकश्रेणी में संक्रम करके खपा दे तो सबका एक साथ मोक्ष हो । यदि दूसरों ने किए कर्म का संक्रम हो सके तो, क्षपकश्रेणी में रहा एक आत्मा सारे प्राणी के कर्म को खपाने में समर्थ है । लेकिन ऐसा नहीं होता, इसलिए दूसरों ने किया कर्म दूसरे में संक्रम न हो सके ? (उसका उत्तर देते हुए बताते हैं कि) जो साधु प्रमत्त हो और कुशल न हो तो साधु कर्म से बँधता है, लेकिन जो अप्रमत्त और कुशल होते हैं वो कर्म से नहीं बँधता । आधाकर्मी आहार ग्रहण करने की ईच्छा करना अशुभ परिणाम है । अशुभ परिणाम होने से वो अशुभ कर्मबँध करता है । जो साधु आधाकर्मी आहार ग्रहण नहीं करते, उसका परिणाम अशुभ नहीं होता, यानि उसको अशुभ कर्मबँध नहीं होता । इसलिए आधाकर्मी आहार ग्रहण करने की ईच्छा कोशीश से साधु को नहीं करनी चाहिए । दूसरे ने किया कर्म खुद को तब ही बँधा जाए कि जब आधाकर्मी आहार ग्रहण करे और ग्रहण किया वो आहार खाए । उपचार से यहाँ आधाकर्म को आत्मकर्म कहा गया है ।

कौन-सी चीज आधाकर्मी बने? अशन, पान, खादिम और स्वादिम । इस चार प्रकार का आहार आधाकर्मी बनता है । इस प्रकार प्रवचन में श्री तीर्थंकर भगवंत कहते हैं । किस प्रकार का आधाकर्मी बनता है ? तो धान्यादि की उत्पत्ति से लेकर चार प्रकार का आहार अचित्तप्रासुक बने तब तक यदि साधु का उद्देश रखा गया हो, तो वे तैयार आहार तक का सबकुछ आधाकर्मी कहलाता है । वस्त्रादि भी साधु निमित्त से किया जाए तो उस साधु को वो सब भी आधाकर्मी-अकल्प्य बनता है । लेकिन यहाँ पिंड़ का अधिकार होने से अशन आदि चार प्रकार के आहार का ही विषय बताया है । अशन, पान, खादिम और स्वादिम यह चार प्रकार का आहार आधाकर्मी हो सकता है । उसमें कृत और निष्ठित ऐसे भेद होते हैं । कृत – यानि साधु को उद्देशकर वो अशन आदि करने की शुरूआत करना । निष्ठित यानि साधु को उद्देशकर वो अशन आदि प्रासुक अचित्त बनाना । शंका – शुरू से लेकर अशन आदि आधाकर्मी किस प्रकार मुमकिन बने ? साधु को आधाकर्मी न कल्पे ऐसा पता हो या न हो ऐसा किसी गृहस्थ साधु ऊपर की अति भक्ति में किसी प्रकार उसको पता चले कि, 'साधुओं को इस प्रकार के आहार आदि की जरुर है ।' इसलिए वो गृहस्थ उस प्रकार का धान्य आदि खुद या दूसरों से खेत में बोकर वो चीज बनवाए । तो शुरू से वो चीज आधाकर्मी कहलाती है ।

अशन आदि शुरू से लेकर जब तक अचित्त न बने तब तक वो 'कृत्त' कहलाता है और अचित्त बनने के बाद वो 'निष्ठित' कहलाता है । कृत और निष्ठित में चतुर्भंगी गृहस्थ और साधु को उद्देशकर होता है । साधु के लिए कृत और साधु के लिए निष्ठित । साधु के लिए कृत और गृहस्थ के लिए निष्ठित । गृहस्थ के लिए कृत (शुरूआत) और साधु के लिए निष्ठित, गृहस्थ के लिए कृत (शुरूआत) और गृहस्थ के लिए निष्ठित । इन चार भांगा में दूसरे और चोथे भांगा में तैयार होनेवाला आहार आदि साधु को कल्पे । पहला और तीसरा भांगा अकल्प्य।

साधु को उद्देशकर ड़ाँगर बोना, क्यारे में पानी देना, पौधा नीकलने के बाद लणना, धान्य अलग करना और चावल अलग करने के लिए दो बार किनार पर, तब तक का सभी कृत कहलाता है । जब कि तीसरी बार छड़कर चावल अलग किए जाए तब उसे निष्ठित कहते हैं । इसी प्रकार पानी, खादिम और स्वादिम के लिए समझ लेना – तीसरी बार भी साधु के निमित्त से छड़कर बनाया गया चावल गृहस्थ ने अपने लिए पकाए हो तो भी साधु को वो चावल – हिस्सा न कल्पे, इसलिए वो आधाकर्मी ही माना जाता है । लेकिन ड़ाँगर दूसरी बार छड़ने तक साधु का उद्देश हो और तीसरी बार गृहस्थ ने अपने उद्देश से छड़े हो और अपने लिए पकाए हो तो वो चावल साधु को कल्प सकते हैं । जो ड़ाँगर तीसरी बार साधु ने छड़कर चावल बनाए हो, वो चावल गृहस्थ ने अपने लिए पकाए हो तो बने हुए चावल एक ने दूसरों को दिए, दूसरे ने तीसरे को दिया, तीसरे ने चौथे को दिया ऐसे यावत् एक हजार

स्थान पर दिया गया हो तब तक तो चावल साधु को न कल्पे, लेकिन एक हजार के बाद के स्थान पर गए हो तो वो चावल साधु को कल्पे । कुछ आचार्य ऐसा कहते हैं कि, लाखो घर जाए तो भी न कल्पे ।

पानी के लिए साधु को उद्देशकर पानी के लिए कुआ खुदने की क्रिया से लेकर अन्त में तीन ऊबाल आने के बाद जब तक नीचे न उतरा जाए तब तक क्रिया को कृत कहते हैं और नीचे ऊतरने की क्रिया को निष्ठित कहते हैं । इसलिए ऐसा तय होता है कि, 'सचित्त चीज को अचित्त बनाने की शुरूआत करने के बाद अन्त में अचित्त बने तब तक यदि साधु का उद्देश रखा गया हो तो वो चीज साधु को न कल्पे, लेकिन यदि साधु को उद्देशकर शुरू करने के बाद अचित्त बनने से पहले साधु का उद्देश बदलकर गृहस्थ अपने लिए चीज तैयार करे, अचित्त करे तो वो चीज साधु को कल्पे । और फिर अचित्त चीज को अग्नि आदि के आरम्भ से साधु को उद्देशकर पकाया जाए तो वो चीज साधु को न कल्पे, लेकिन वो अचित्त चीज पकाने की शुरूआत साधु को उद्देशकर की हो और पकाई; लेकिन पकाकर तैयार करने के बाद चूल्हा पर से गृहस्थ ने अपने लिए उतारी हो तो वो चीज साधु को कल्पे । लेकिन अचित्त चीज गृहस्थ ने अपने लिए पकाने की शुरूआत की हो और पकाई हो लेकिन साधु आने के या समाचार जानकर साधु को वहोराने के निमित्त से वो तैयार की गई चीज चूल्हे पर से नीचे उतारे तो वो साधु को न कल्पे ।

किसके लिए बनाया आधाकर्मी कहलाता है ? प्रवचन और लिंग – वेश से जो साधु का साधर्मिक हो, उनके लिए बनाई हुई चीज साधु के लिए आधाकर्मी दोषवाली है । इसलिए वो चीज साधु को न कल्पे । लेकिन प्रत्येकबुद्ध, निह्नव, तीर्थंकर आदि के लिए बनाई गई चीज साधु को कल्पे । साधर्मिक के प्रकार बताते हैं । १. नाम, २. स्थापना, ३. द्रव्य, ४. क्षेत्र, ५. काल, ६. प्रवचन, ७. लिंग, ८. दर्शन, ९. ज्ञान, १०. चारित्र, ११. अभिग्रह और १२. भावना । यह बारह प्रकार से साधर्मिक हो ।

इस बारह प्रकार के साधर्मिक में कल्प्य और अकल्प्यपन बताते हैं । नाम साधर्मिक – किसी पुरुष अपने पिता जिन्दा हो तब या मर जाने के बाद उनके अनुराग से उस नामवाले को आहार देने की उम्मीद करे, यानि वो तय करे कि 'जो किसी देवदत्त नाम के गृहस्थ या त्यागी हो वो सबको मैं भोजन बनाके दूँ ।' जब ऐसा संकल्प हो तो देवदत्त नाम के साधु को वो भोजन न कल्पे, लेकिन उस नाम के अलावा दूसरे नामवाले साधु को कल्पे ।

स्थापना साधर्मिक – किसी के रिश्तेदार ने दीक्षा ली हो और उनके राग से वो रिश्तेदार साधु की मूरत या तसवीर बनाकर उनके सामने रखने के लिए भोजन तैयार करवाए और फिर तय करे कि, ''ऐसे वेशवाले को मैं यह भोजन दूँ ।'' तो साधु को न कल्पे ।

द्रव्य साधर्मिक – साधु का कालधर्म हुआ हो और उनके निमित्त से आहार बनाकर साधु को देने का संकल्प किया हो तो साधु को वो आहार लेना न कल्पे ।

क्षेत्र साधर्मिक – सौराष्ट्र, कच्छ, गुजरात, मारवाड़, महाराष्ट्र, बंगाल आदि प्रदेश को क्षेत्र कहते हैं । और फिर गाँव, नगर, गली, महोल्ला आदि भी क्षेत्र कहलाते हैं । 'सौराष्ट्र देश में उत्पन्न होनेवाले साधु को मैं आहार दूँ ।' ऐसा तय किया हो तो सौराष्ट्र देश में उत्पन्न होनेवाले साधु को न कल्पे, दूसरे साधु को कल्पे ।

काल साधर्मिक – महिना, दिन, प्रहर आदि काल कहलाते हैं । कुछ तिथि, कुछ दिन या कुछ प्रहर में उत्पन्न होनेवाले साधु को वो आहार न कल्पे, उसके सिवा के न कल्पे ।

प्रवचन, लिंग, दर्शन, ज्ञान, चारित्र, अभिग्रह और भावना – इस सात प्रकार के साधर्मिक में द्विसंयोगी २१ भांगा होते हैं । वो इस प्रकार – १. प्रवचन और लिंग । २. प्रवचन और दर्शन । ३. प्रवचन और ज्ञान । ४. प्रवचन और चारित्र । ५. प्रवचन और अभिग्रह । ६. प्रवचन और भावना । ७. लिंग और दर्शन । ८. लिंग और ज्ञान । ९. लिंग और चारित्र । १०. लिंग और अभिग्रह । ११. लिंग और भावना । १२. दर्शन और ज्ञान । १३. दर्शन और चारित्र । १४. दर्शन और अभिग्रह । १५. दर्शन और भावना । १६. ज्ञान और चारित्र । १७. ज्ञान और अभिग्रह । १८. ज्ञान और भावना । १९. चारित्र और अभिग्रह । २०. चारित्र और भावना । २१. अभिग्रह और भावना ।

ऊपर कहे अनुसार इक्कीस भेद में चार-चार भांगा नीचे के अनुसार होते हैं । प्रवचन से साधर्मिक, लिंग

(वेश) से नहीं । लिंग से साधर्मिक प्रवचन से नहीं । प्रवचन से साधर्मिक और लिंग से साधर्मिक । प्रवचन से नहीं और लिंग से नहीं । इस प्रकार बाकी के बीस भेद में ४-४ भांगा समझना ।

प्रवचन से साधर्मिक लेकिन लिंग से नहीं । अविरति सम्यग्दृष्टि से लेकर श्रावक होकर दशवीं प्रतिमा वहन करनेवाले श्रावक तक लिंग से साधर्मिक नहीं है । लिंग से साधर्मिक लेकिन प्रवचन से साधर्मिक नहीं – श्रावक की ग्यारहवीं प्रतिमा वहन करनेवाले (मुंड़न करवाया हो) श्रावक लिंग से साधर्मिक है । लेकिन प्रवचन से साधर्मिक नहीं । उनके लिए बनाया गया आहार साधु को कल्पे । निह्नव संघ बाहर होने से प्रवचन से साधर्मिक नहीं लेकिन लिंग से साधर्मिक है । उनके लिए बनाया गया साधु को कल्पे । लेकिन यदि उसे निह्नव की तरह लोग पहचानते न हो तो ऐसे निह्नव के लिए बनाया भी साधु को न कल्पे । प्रवचन से साधर्मिक और लिंग से भी साधर्मिक – साधु या ग्यारहवी प्रतिमा वहन करनेवाले श्रावक । साधु के लिए किया गया न कल्पे, श्रावक के लिए किया गया कल्पे । प्रवचन से साधर्मिक नहीं और लिंग से भी साधर्मिक नहीं गृहस्थ, प्रत्येक बुद्ध और तीर्थंकर, उनके लिए किया हुआ साधु को कल्पे । क्योंकि प्रत्येक बुद्ध और श्री तीर्थंकर लिंग और प्रवचन से अतीत हैं । इसी प्रकार प्रवचन और दर्शन की, प्रवचन और ज्ञान की, प्रवचन और चारित्र की, प्रवचन और अभिग्रह की, प्रवचन और भावना की, लिंग और दर्शन या ज्ञान या चारित्र या अभिग्रह या भावना की चतुर्भंगी, दर्शन के साथ ज्ञान, चारित्र, अभिग्रह और भावना की चतुर्भंगी, ज्ञान के साथ चारित्र या अभिग्रह या भावना की चतुर्भंगी और अन्त में चारित्र के साथ अभिग्रह और भावना की चतुर्भंगी ऐसे दूसरी बीस चतुर्भंगी की जाती है । इन हर एक भेदमें साधु के लिए किया गया हो तो साधु को न कल्पे । तीर्थंकर, प्रत्येकबुद्ध, निह्नवों और श्रावक के लिए किया गया हो तो साधु को कल्पे

किस प्रकार से उपयोग करने से आधाकर्म बँधता है ? प्रतिसेवना यानि आधाकर्मी दोषवाले आहार आदि खाना, प्रतिश्रवणा यानि आधाकर्मी आहार के न्योते का स्वीकारना । संवास यानि आधाकर्मी आहार खानेवाले के साथ रहना । अनुमोदन यानि आधाकर्मी आहार खानेवाले की प्रशंसा करना । इन चार प्रकार के व्यवहार से आधा कर्म दोष का कर्मबँध होता है । इसके लिए चोर, राजपुत्र, चोर की पल्ली और राजदुष्ट मानव का, ऐसे चार दृष्टांत हैं

प्रतिसेवना –दूसरों के लाया हुआ आधाकर्मी आहार खाना । दूसरों के लाया हुआ आधाकर्मी आहार खाने वाले साधु को, कोइ साधु कहे कि, 'तुम संयत होकर आधाकर्मी आहार क्यों खाते हो' ऐसा सुनकर वो जवाब देता है कि, इसमें मुझे कोई दोष नहीं है क्योंकि मैं आधाकर्मी आहार नहीं लाया हूँ, वो तो जो लाते हैं उनको दोष लगता है । जैसे अंगारे दूसरों से नीकलवाए तो खुद नहीं जलता, ऐसे आधाकर्मी लाए तो उसे दोष लगे । इसमें मुझे क्या ? इस प्रकार उल्टी मिसाल दे और दूसरों का लाया हुआ आहार खुद खाए उसे प्रतिसेवना कहते हैं । दूसरों के लाया हुआ आधाकर्मी आहार साधु खाए तो उसे खाने से आत्मा पापकर्म से बँधता है । वो समझने के लिए चोर का दृष्टांत –किसी एक गाँव में चोर लोग रहते थे । एक बार कुछ चोर पास के गाँव में जाकर कुछ गाय को उठाकर अपने गाँव की ओर आ रहे थे, वहाँ रास्ते में दूसरे कुछ चोर और मुसाफिर मिले । सब साथ-साथ आगे चलते हैं । ऐसा करने से अपने देश की हद आ गई, वे निर्भय होकर किसी पेड़ के नीचे विश्राम करने बैठे और भोजन करते समय कुछ गाय को मार डाला और उनका माँस पकाने लगे । उस समय दूसरे मुसाफिर आए । चोरों ने उन्हें भी न्यौता दिया । पकाया हुआ माँस खाने के लिए दिया । उसमें से कुछ ने 'गाय के माँस का भक्षण पापकारक है' ऐसा समझकर माँस न खाया, कुछ परोसते थे, कुछ खाते थे, उतने में सिपाही आए और सबको घैरकर पकड़ लिया । जो रास्ते में इकट्ठे हुए थे वो कहने लगे कि, 'हमने चोरी नहीं की, हम तो रास्ते में मिले थे ।' मुसाफिर ने कहा कि, हम तो इस ओर से आते हैं और यहाँ विसामा लेत हैं । सिपाही ने उनकी एक न सुनी और सबको मार ड़ाला । चोरी न करने के बावजूद रास्ते में मिलने से चोर के साथ मर गए । इस दृष्टांत में चोरों को रास्ते में और भोजन के समय ही मुसाफिर मिले । उसमें भी जो भोजन करने में नहीं थे केवल परोसने में थे, उनको भी सिपाही ने पकड़ लिया और मार ड़ाला । ऐसे जो साधु दूसरे साधुओं को पापकर्मी आहार देते हैं, वो साधु नरक आदि गति

के आशयभूत कर्म ही बाँधते हैं; तो फिर जो आधाकर्मी आहार खाए उनको बँध हो उसके लिए क्या कहें ?

प्रतिश्रवणा – आधाकर्मी लानेवाले साधु को गुरु दाक्षिण्यतादि 'लाभ' कहे, आधाकर्मी आहार लेकर किसी साधु गुरु के पास आए और आधाकर्मी आहार आलोचना करे वहाँ गुरु 'अच्छा हुआ तुम्हें यह मिला' ऐसा कहे, इस प्रकार सुन ले । लेकिन निषेध न करे तो प्रतिश्रवणा कहते हैं । उस पर राजपुत्र का दृष्टांत । गुणसमृद्ध नाम के नगर में महाबल राजा राज करे । उनकी शीला महारानी है । उनके पेट से एक पुत्र हुआ उसका नाम विजित समर रखा। उम्र होते ही कुमार को राज्य पाने की ईच्छा हुई और मन में सोचने लगा कि मेरे पिता वृद्ध हुए हैं फिर भी मरे नहीं, इसलिए लम्बी आयुवाले लगते हैं । इसलिए मेरे सुभट की सहाय पाकर मेरे पिता को मार डालूँ और मैं राजा बन जाऊं । इस प्रकार सोचकर गुप्तस्थान में अपने सुभट को बुलाकर अभिप्राय बताया । उसमें से कुछ ने कहा कि, कुमार ! तुम्हारा विचार उत्तम है । हम तुम्हारे काम में सहायता करेंगे । कुछ लोगों ने कहा कि, इस प्रकार करो । कुछ चूप रहे लेकिन कोई जवाब नहीं दिया । कुछ सुभट को कुमार की बात अच्छी न लगी इसलिए राजा के पास जाकर गुप्त में सभी बातें जाहीर कर दी । यह बात सुनते ही राजा कोपायमान हुआ और राजकुमार और सुभट को कैद किया । फिर जिन्होंने 'सहाय करेंगे' ऐसा कहा था, 'ऐसे करो' ऐसा कहा था और जो चूप रहे थे उन सभी सुभटों को और राजकुमार को मार ड़ाला । जिन्होंने राजा को खबर दी थी उन सुभटों की तनखा बढ़ाई, मान बढ़ाया और अच्छा तौहफा दिया ।

किसी साधु ने चार साधुओं को आधाकर्मी आहार के लिए न्यौता दिया । यह न्यौता सुनकर एक साधु ने वो आधाकर्मी आहार खाया । दूसरे ने ऐसा कहा कि, मैं नहीं खाऊंगा, तुम खाओ । तीसरा साधु कुछ न बोला । जब कि चौथे साधु ने कहा कि, साधु को आधाकर्मी आहार न कल्पे, इसलिए तुम वो आहार मत लेना । इसमें पहले तीन को 'प्रतिश्रवणा' दोष लगे । जब कि चौथे साधु के निषेध करने से उसे 'प्रतिश्रवणा' दोष नहीं लगता ।

संवास – आधाकर्मी आहार खाते हो उनके साथ रहना । काफी रूक्ष वृत्ति से निर्वाह करनेवाले साधु को भी आधाकर्मी आहार खानेवाले के साथ का सहवास, आधाकर्मी आहार का दर्शन, गंध और उसकी बातचीत भी साधु को ललचाकर नीचा दीखानेवाली है । इसलिए आधाकर्मी आहार खानेवाले साधु के साथ रहना भी न कल्पे । उन पर चोरपल्ली का दृष्टांत । वसंतपुर नगर में अरिमर्दन राजा राज करे । उनकी प्रियदर्शना रानी है । वसंतपुर नगर के पास में थोड़ी दूर भीम नाम की पल्ली आई हुई है । कुछ भील जाति के चोर रहते हैं और कुछ वणिक रहते हैं । भील लोग के गाँव में जाकर लूँटमार करे, लोगों को परेशान करे, ताकतवर होने से किसी सामंत राजा या मांड़लिक राजा उन्हें पकड़ नहीं सकते । दिन ब दिन भील लोगों का त्रास बढ़ने लगा इसलिए मांड़लिक राजा ने अरिमर्दन राजा को यह हकीकत बताई । यह सुनकर अरिमर्दन राजा कोपायमान हुआ । कईं सुभट आदि सामग्री सज्ज करके भील लोगों की पल्ली के पास आ पहुँचे । भील को पता चलते ही, वो भी आए । दोनों के बीच तुमुल युद्ध हुआ । उसमें कुछ भील मर गए, कुछ भील भाग गए । राजा ने पूरी पल्ली को घेर लिया और सबको कैद किया । वहाँ रहनेवाले वणिक ने सोचा कि, हम चोर नहीं है, इसलिए राजा हमको कुछ नहीं करेंगे । ऐसा सोचकर उन्होंने नासभाग नहीं की लेकिन वहीं रहे । लेकिन राज के हूकम से सैनिक ने उन सबको कैद किया और सबको राजा के पास हाजिर किया । वणिक ने कहा कि हम वणिक है लेकिन चोर नहीं है । राजा ने कहा कि, तुम भले ही चोर नहीं हो लेकिन तुम चोर से भी ज्यादा शिक्षा के लायक हो, क्योंकि हमारे अपराधी ऐसे भील लोगों के साथ रहे हो । ऐसा कहकर सबको सझा दी । ऐसे साधु भी आधाकर्मी आहार खानेवाले के साथ रहे तो उसे भी दोष लगता है । इसलिए आधाकर्मी आहार खाते हो ऐसे साधु के साथ नहीं रहना चाहिए ।

अनुमोदना – आधाकर्मी आहार खानेवाले की प्रशंसा करना । यह पून्यशाली है । अच्छा-अच्छा मिलता है और हररोज अच्छा खाते हैं । या किसी साधु ऐसा बोले कि, 'हमें कभी भी ईच्छित आहार नहीं मिलता, जब की इन्हें तो हंमेशा ईच्छित आहार मिलता है, वो भी पूरा, आदरपूर्वक, समय पर और मौसम के उचित मिलता है, इसलिए ये सुख से जीते हैं, सुखी हैं । इस प्रकार आधाकर्मी आहार करनेवाले की प्रशंसा करने से अनुमोदना का

दोष लगता है । किसी साधु आधाकर्मी आहार खाते हो उसे देखकर कोई उनकी प्रशंसा करे कि, 'धन्य है, ये सुख से जीते हैं ।' जब कि दूसरे कहें कि, 'धिक्कार है इन्हें कि, शास्त्र में निषेध किए गए आहार को खाते हैं ।' जो साधु अनुमोदना करते हैं उन साधुओं को अनुमोदना का दोष लगता है, वो सम्बन्धी कर्म बाँधते हैं । जब कि दूसरों को वो दोष नहीं लगता ।

प्रतिसेवना दोष में प्रतिश्रवणा – संवास और अनुमोदना चार दोष लगे, प्रतिश्रवणा में संवास और अनुमोदना के साथ तीन दोष लगे । संवास दोष में संवास और अनुमोदना दो दोष लगे । अनुमोदना दोष में एक अनुमोदना दोष लगे । इसलिए साधु ने इन चार दोष में से किसी दोष न लगे उसकी देखभाल रखे ।

आधाकर्म किसके जैसा है ? आधाकर्मी आहार वमेल भोजन विष्टा, मदिरा और गाय के माँस जैसा है । आधाकर्मी आहार जिस पात्र में लाए हो या रखा हो उस पात्र का गोबर आदि से घिसकर तीन बार पानी से धोकर सूखाने के बाद, उसमें दूसरा शुद्ध आहार लेना कल्पे । साधु ने असंयम का त्याग किया है, जब कि आधाकर्मी आहार असंयमकारी है, इसलिए वमेल चाहे जितना भी सुन्दर हो लेकिन नहीं खाते । और फिर तिल का आँटा, श्रीफल, आदि फल विष्टा में या अशुचि में गिर जाए तो उसमें विष्टा या अशुचि गिर जाए तो वो चीज खाने के लायक नहीं रहती । ऐसे शुद्ध आहार में आधाकर्मी आहार गिर जाए या उसमें मिल जाए तो वो शुद्ध आहार भी उपयोग करने के लायक नहीं रहता और उस पात्र को भी गोबर आदि घिसकर तीन बार धोने के बाद उस पात्र में दूसरा आहार लेना कल्पे ।

आधाकर्म खाने में कौन-से दोष हैं ? आधाकर्मी आहार ग्रहण करने में – १. अतिक्रम, २. व्यतिक्रम, ३. अतिचार, ४. अनाचार, ५. आज्ञाभंग, ६. अनवस्था, ७. मिथ्यात्व और ८. विराधना दोष लगता है । अतिक्रम – आधाकर्मी आहार के लिए न्यौता सुने, ग्रहण करनेवाले की ईच्छा बताए या निषेध न करे और लेने जाने के लिए कदम न उठाए तब तक अतिक्रम नाम का दोष लगता है । व्यतिक्रम – आधाकर्मी आहार लेने के लिए वसति उपाश्रय में से नीकलकर गृहस्थ के वहाँ जाए और जब तक आहार ग्रहण न करे तब तक व्यतिक्रम नाम का दोष लगता है । अतिचार – आधाकर्मी आहार ग्रहण करके वसति में आए, खाने के लिए बैठे और जब तक नीवाला मुँह में न जाए तब तक अतिचार नाम का दोष लगता है । अनाचार – आधाकर्मी आहार का नीवाला मुँह में ड़ालकर नीगल जाए तब अनाचार नाम का दोष लगता है । अतिक्रम आदि दोष उत्तरोत्तर ज्यादा से ज्यादा चारित्रधर्म का उल्लंघन करनीवाले उग्र दोष हैं ।

आज्ञाभंग – बिना कारण, स्वाद की खातिर आधाकर्मी खाने से आज्ञाभंग दोष लगता है । श्री तीर्थंकर भगवंत ने बिना कारण आधाकर्मी आहार खाने का निषेध किया है । अनवस्था – एक साधु दूसरे साधु को आधाकर्मी आहार खाते हुए देखे इसलिए उन्हें भी आधाकर्मी आहार खाने की ईच्छा हो, उन्हें देखकर तीसरे साधु को ईच्छा हो ऐसे परम्परा बढ़े ऐसे परम्परा बढ़ने से संयम का सर्वथा उच्छेद होने का अवसर आए । इसलिए अनवस्था नाम का दोष लगता है । मिथ्यात्व – दीक्षा ग्रहण करे तब साधु ने सभी सावद्य योग की प्रतिज्ञा त्रिविध-त्रिविध से की हो, आधाकर्मी आहार खाने में जीववध की अनुमति आ जाती है । इसलिए आधाकर्मी आहार नहीं खाना चाहिए । जब वो साधु दूसरे साधु को आधाकर्मी आहार खाते हुए देखें तो उनके मन में लगे कि, 'यह साधु असत्यवादी हे, बोलते कुछ हैं और करते कुछ हैं । इसलिए उस साधु की श्रद्धा चलायमान बने और मिथ्यात्व पाए।

विराधना – विराधना तीन प्रकार से । आत्म विराधना, संयम विराधना, प्रवचन विराधना । अतिथि की प्रकार साधु के लिए आधाकर्मी आहार, गृहस्थ गौरवपूर्वक बनाए, इसलिए स्वादिष्ट और स्निग्ध हो और इससे ऐसा आहार साधु आदि खाए । ज्यादा खाने से बीमारी आए, स्वाध्याय न हो, सूत्र-अर्थ का विस्मरण हो, भूल जाए । देह में हलचल होने से चारित्र की श्रद्धा कम हो, दर्शन का नाश हो । प्रत्युपेक्षणा की कमी यानि चारित्र का नाश । ऐसे ज्ञान, दर्शन, चारित्र समान संयमी आत्मा की विराधना हुई । बीमारी में देखभाल करने में छह काय जीव की विराधना और वैयावच्च करनेवाले साधु को सूत्र अर्थ की हानि हो, इसलिए संयम विराधना । लम्बे अरसे की

बीमारी में 'यह साधु ज्यादा खानेवाले हैं' खुद के पेट को भी नहीं पहचानते, इसलिए बीमार होते हैं आदि दूसरे लोग बोले । इसलिए प्रवचन विराधना । आधाकर्मी आहार खाने में इसी प्रकार दोष रहे हैं । इसलिए आधाकर्मी आहार नहीं खाना चाहिए ।

श्री जिनेश्वर भगवंत की आज्ञा का भंग करके जो साधु आधाकर्मी आहार खाते हैं, उस साधु को सद्गति दिलानेवाले अनुष्ठान रूप संयम की आराधना नहीं होती । लेकिन संयम का घात होने से नरक आदि दुर्गति में जाना होता है । इस लोक में राजा की आज्ञा का भंग करने से जीव को दंड़ना पड़ता है । यानि जन्म मरण आदि कईं प्रकार के दुःख भुगतने पड़ते हैं । आधाकर्मी आहार खाने की बुद्धिवाले शुद्ध आहार खाने के बावजूद भी आज्ञाभंग के दोष से दंड़ते हैं और शुद्ध आहार की गवेषणा करनेवाले को शायद आधाकर्मी आहार खाने में आ जाए तो भी वो दंड़ते नहीं क्योंकि उन्होंने श्री तीर्थंकर भगवंत की आज्ञा का पालन किया है ।

आधाकर्मी आहार देने में कौन-से दोष हैं ? निर्वाह होता हो उस समय आधाकर्मी अशुद्ध आहार देने से, देनेवाला और लेनेवाला दोनों का अहित होता है । लेकिन निर्वाह न होता हो (यानि ग्लान आदि कारण से) तो देने में और लेने में दोनों को हितावह है । आधाकर्मी आहार चारित्र को नष्ट करता है, इससे गृहस्थ के लिए उत्सर्ग से साधु को आधाकर्मी आहार का दान देना योग्य नहीं माना, फिर भी ग्लान आदि कारण से या अकाल आदि के समय ऐतराझ नहीं है बल्कि योग्य है और फायदेमंद है । जैसे बुखार से पीड़ित दर्दी को घेबर आदि देनेवाले वैद्य दोनों का अहित करते हैं और भस्मकपातादि की बीमारी में घेबर आदि दोनों का हित करते हैं, ऐसे बिना कारण देने से देनेवाला और लेनेवाला दोनों का अहित हो, बिना कारण देने से दोनों को फायदा हो ।

आधाकर्म मालूम करने के लिए किस प्रकार पूछे ? आधाकर्मी आहार ग्रहण न हो जाए इसलिए पूछना चाहिए । वो विधिवत् पूछना चाहिए लेकिन अविधिपूर्वक नहीं पूछना चाहिए । उसमें जो एक विधिवत् पूछने का और दूसरा अविधिवत् पूछने का उसमें अविधिपूर्वक पूछने से नुकसान होता है और उस पर दृष्टांत । शाली नाम के एक गाँव में एक ग्रामणी नाम का वणिक रहता था । उसकी पत्नी भी ग्रामणी नाम की थी । एक बार वणिक दुकान पर गया था तब उसके घर एक साधु भिक्षा के लिए आए । ग्रामणी साधु को शालिजात के चावल वहोराने लगी । चावल आधाकर्मी है या शुद्ध ? वो पता करने के लिए साधुने उस स्त्री को पूछा कि, 'हे श्राविका ! यह चावल कहाँ के हैं ?' उस स्त्री ने कहा कि, मुझे नहीं पता । मेरे पति जाने, दुकान जाकर पूछ लो । इसलिए साधु ने दुकान पर जाकर पूछा । वणिक ने कहा कि, मगध देश के सीमाड़े के गोबर गाँव से आए हैं । यह सुनकर वो साधु गोबर गाँव जाने के लिए तैयार हो गया । वहाँ भी उसे शक हुआ कि, यह रास्ता किसी श्रावक ने साधु के लिए बनाया होता तो? उस शक से रास्ता छोड़कर उल्टे रास्ते पर चलने लगा । इसलिए पाँव में काँटे–कंकर लगे, कुत्ते ने काट लिया, सूर्य की गर्मी भी बढ़ने लगी । आधाकर्म की शंका से पेड़ की छाँव में भी नहीं बैठता । इसलिए ज्यादा गर्मी लगने से वो साधु मूर्छित हो गया, काफी परेशान हो गया ।

इस प्रकार करने से ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना नहीं हो सकती । यह अविधि पृच्छा है, इस प्रकार नहीं पूछना चाहिए, लेकिन विधिवत् पूछे, वो बताते हैं – उस देश में चीज की कमी हो और वहाँ कईं बार देखा जाए, घर में लोग कम हो और खाना ज्यादा दिखे । काफी आग्रह करते हो तो वहाँ पूछे कि यह चीज किसके लिए और किसके निमित्त से बनाई है ? उस देश में काफी चीज होती हो, तो वहाँ पूछने की जरुर नहीं है । लेकिन घर में लोग कम हो और आग्रह करे तो पूछे । अनादर यानि काफी आग्रह न हो और घर में पुरुष कम हो तो पूछने की जरुरत नहीं है । क्योंकि आधाकर्मी हो तो आग्रह करे । देनेवाला सरल हो तो पूछने पर जैसा हो वैसा बोल दे कि, भगवन् ! यह तुम्हारे लिए बनाया है । मायावी हो तो यह ग्रहण करो । तुम्हारे लिए कुछ नहीं बनाया । ऐसा कहकर घर में दूसरों के सामने देखे या हँसे । मुँह पर के भाव से पता चले कि 'यह आधाकर्मी है ।' यह किसके लिए बनाया है ? ऐसा पूछने से देनेवाला क्रोधित हो और बोले कि, तुमको क्या ? तो वहाँ आहार ग्रहण करने में शक मत करना ।

उपयोग रखने के बावजूद भी किस प्रकार आधाकर्म का ग्रहण हो ? जो कोई श्रावक-श्राविका काफी भक्तिवाले और गहरे आचारवाले हों वो आधाकर्मी आहार बनाकर वहोराने में काफी आदर न दिखाए, पूछने के बावजूद सच न बोले या चीज कम हो तो अशुद्ध कैसे होगी ? इसलिए साधु ने पूछा न हो । इस कारण से वो आहार आधाकर्मी होने के बावजूद, शुद्ध समझकर ग्रहण करने से साधु ठग जाए ।

गृहस्थ के छल से आधाकर्मी ग्रहण करने के बावजूद भी निर्दोषता कैसे ? गाथा में 'फासुयभोई' का अर्थ यहाँ 'सर्व दोष रहित शुद्ध आहार खानेवाला करना है ।' साधु का आचार है कि ग्लान आदि प्रयोजन के समय निर्दोष आहार की गवेषणा करना । निर्दोष न मिले तो कम से कम दोषवाली चीज ले, वो न मिले तो श्रावक आदि को सूचना देकर दोषवाली ले । श्रावक की कमी से शास्त्र की विधिवत् ग्रहण करे । लेकिन अप्रासुक यानि सचित्त चीज को तो कभी भी न ले ।

आधाकर्मी आहार खाने के परिणामवाला साधु शुद्ध आहार लेने के बावजूद, कर्मबँध से बँधता है, जब कि शुद्ध आहार की गवेषणा करनेवाले को शायद आधाकर्मी आहार आ जाए और वो अशुद्ध आहार खाने के बावजूद वो कर्मबँध से नहीं बँधता क्योंकि उसमें आधाकर्मी आहार लेने की भावना नहीं है । शुद्ध में अशुद्ध बुद्धि से खानेवाले साधु कर्म से बँधते हैं ।

शुद्ध की गवेषणा करने से अशुद्ध आ जाए तो भी भाव शुद्धि से साधु को निर्जरा होती है, उस पर अब दृष्टांत – आचार्य भगवंत श्री रत्नाकर सूरीश्वरजी महाराज ५०० शिष्य से परिवरित शास्त्र की विधिवत् विहार करते करते पोतनपुर नाम के नगर में आए । ५०० शिष्य में एक प्रियंकर नाम के साधु मासखमण के पारणे के मासखमण का तप करनेवाले थे । पारणे के दिन उस साधु ने सोचा कि, मेरा पारणा जानकर किसी ने आधाकर्मी आहार किया हो, इसलिए पास के गाँव में गोचरी जाऊं, कि जिससे शुद्ध आहार मिले । ऐसा सोचकर उस गाँव में गोचरी के लिए न जाते हुए पास के एक गाँव में गए । उस गाँव में यशोमती नाम की विचक्षण श्राविका रहती थी । लोगों के मुख से तपस्वी पारणा का दिन उसको पता चला । इसलिए उसने सोचा कि, शायद वो तपस्वी महात्मा पारणा के लिए आए तो मुझे फायदा हो सके, उस आशय से काफी भक्तिपूर्वक खीर आदि उत्तम रसोई तैयार की ।

खीर आदि उत्तम द्रव्य देखकर साधु को आधाकर्मी का शक न हो, इसलिए पत्ते के पड़िये में बच्चों के लिए थोड़ी थोरी खीर रख दी और बच्चों को शीखाया कि, यदि इस प्रकार के साधु यहाँ आएंगे तो बोलो कि हे मा ! हमें इतनी सारी खीर क्यों दी ? भाग्य से वो तपस्वी साधु घूमते-घूमते सबसे पहले यशोमत श्राविका के घर आ पहुँचे । यशोमती भीतर से काफी खुश हुई, लेकिन साधु को शक न हो इसलिए बाहर से खास कोई सम्मान न दिया, बच्चों को शीखाने के अनुसार बोलने लगे, इसलिए यशोमती ने बच्चों पर गुस्सा किया । और बाहर से अपमान और गुस्सा होकर साधु को कहा कि, 'यह बच्चे पागल हो गए हैं । खीर भी उन्हें पसंद नहीं है । यदि उन्हें पसंद होती हो तो लो वरना कहीं ओर चले जाव । मुनि को आधाकर्मी आदि के लिए शक न होने से पातरा नीकाला । यशोमती ने काफी भक्तिपूर्वक पातरा भर दिया और दूसरा घी, गुड़ आदि भाव से वहोराया ।

साधु आहार लेकर विशुद्ध अध्यवयसायपूर्वक गाँव के बाहर नीकले और एक पेड़ के नीचे गए, वहाँ विधिवत् इरियावहि आदि करके, फिर कुछ स्वाध्याय किया और सोचने लगे कि, 'आज गोचरी में खीर आदि उत्तम द्रव्य मिले हैं तो किसी साधु आकर मुझे लाभ दे तो मैं संसार सागर को पार कर दूँ । क्योंकि साधु हंमेशा स्वाध्याय में रक्त होते हैं और संसार स्वरूप को यथावस्थित – जैसे है ऐसा हंमेशा सोचते हैं, इसलिए वो दुःख समान संसार से विरक्त होकर मोक्ष की साधना में एकचित्त रहते हैं, आचार्यादि की शक्ति अनुसार वैयावच्च में उद्युत रहते हैं और फिर देश के लब्धिवाले उपदेश देकर काफी उपकार करते हैं और अच्छी प्रकार से संयम का पालन करनेवाले हैं । ऐसे महात्मा को अच्छा आहार ज्ञान आदि में सहायक बने, यह मेरा आहार उन्हें ज्ञानादिक में सहायक बने तो मुझे बड़ा फायदा हो सके । जब ये मेरा शरीर असार प्रायः और फिझूल है, मुझे तो जैसे-तैसे आहार से भी गुझारा हो

सकता है । यह भावनापूर्वक मूर्च्छा रहित वो आहार खाने से विशुद्ध अध्यवसाय होते ही क्षपकश्रेणी लेकर और खाए रहने से केवलज्ञान उत्पन्न हुआ । इस प्रकार भाव से शुद्ध आहार गवेषणा करे फ़िर् भी आधाकर्मी आहार आ जाए तो खाने के बावजूद भी वो आधाकर्मी के कर्मसे नहीं बँधता, क्योंकि वो भगवंत की आज्ञा का पालन करता है

शंका – जिस अशुद्ध आहारादि को साधु ने खुद ने नहीं बनाया, या नहीं बनवाया और फिर बनानेवाले की अनुमोदना नहीं की उस आहार को ग्रहण करने में क्या दोष ?

तुम्हारी बात सही है । जो कि खुद को आहार आदि नहीं करता, दूसरों से भी नहीं करवाता तो भी 'यह आहारादि साधु के लिए बनाया है ।' ऐसा समझने के बावजूद भी यदि वो आधाकर्मी आहार ग्रहण करता है, तो देनेवाले गृहस्थ और दूसरे साधुओं को ऐसा लगे कि, 'आधाकर्मी आहारादि देने में और लेने में कोई दोष नहीं है, यदि दोष होता तो यह साधु जानने के बावजूद भी क्यों ग्रहण करे ?' ऐसा होने से आधाकर्मी आहार में लम्बे अरसे तक छह जीव निकाय का घात चलता रहता है । जो साधु आधाकर्मी आहार का निषेध करे या 'साधु को आधाकर्मी आहार न कल्पे ।' और आधाकर्मी आहार ग्रहण न करे तो ऊपर के अनुसार दोष उन साधु को नहीं लगता । लेकिन आधाकर्मी आहार मालूम होने के बावजूद जो वो आहार ले तो यकीनन उनको अनुमोदना का दोष लगता है । निषेध न करने से अनुमति आ जाती है । और फिर आधाकर्मी आहार खाने का शौख लग जाए, तो ऐसा आहार न मिले तो खुद भी बनाने में लग जाए ऐसा भी हो, इसलिए साधु को आधाकर्मी आहारादि नहीं लेना चाहिए। जो साधु आधाकर्मी आहार ले और उसका प्रायश्चित्त न करे, तो वो साधु श्री जिनेश्वर भगवंत की आज्ञा का भंजक होने से उस साधु का लोच करना, करवाना, विहार करना आदि सब व्यर्थ-निरर्थक है । जैसे कबूतर अपने पंख तोड़ता है और चारों ओर घूमता है लेकिन उसको धर्म के लिए नहीं होता । ऐसे आधाकर्मी आहार लेनेवाले का लोच, विहार आदि धर्म के लिए नहीं होते ।

सूत्र – २४१-२७२

औद्देशिक दोष दो प्रकार से हैं । १. ओघ से और २. विभाग से । ओघ से यानि सामान्य और विभाग से यानि अलग-अलग । ओघ औद्देशिक का बयान आगे आएगा, इसलिए यहाँ नहीं करते । विभाग औद्देशिक बारह प्रकार से है । वो १.उदिष्ट, २.कृत और ३.कर्म । हर एक के चार प्रकार यानि बारह प्रकार होते हैं । ओघ औद्देशिक – पूर्वभवमें कुछ भी दिए बिना इस भव में नहीं मिलता । इसलिए कुछ भिक्षा हम देंगे । इस बुद्धि से गृहस्थ कुछ चावल आदि ज्यादा डालकर जो आहारादि बनाए, उसे ओघऔद्देशिक कहते हैं । ओघ–यानि 'इतना हमारा, इतना भिक्षुक का ।' ऐसा हिस्सा किए बिना आम तोर पर किसी भिक्षुक को देने की बुद्धि से तैयार किया गया अशन आदि ओघ औद्देशिक कहलाता है । हिस्सा –यानि विवाह ब्याह आदि अवसर पर बनाई हुई चीजें बची हो, उसमें से जो भिक्षुक को ध्यान में रखकर अलग बनाई हो वो विभाग औद्देशिक कहलाता है। उसके बारह भेद । इस प्रकार –

उद्दिष्ट – अपने लिए ही बनाए गए आहार में से किसी भिक्षुक को देने के लिए कल्पना करे कि 'इतना साधु को देंगे' वह । कृत – अपने लिए बनाया हुआ, उसमें से उपभोग करके जो बचा हो वह । भिक्षुक को दान देने के लिए छकायादि का सारंग करे वहाँ उद्दिष्ट, कृत एवं कर्म प्रत्येक के चार चार भेद । उद्देश – किसी भी भिक्षुक को देने के लिए कल्पित । समुद्देश – धूर्त लोगों को देने के लिए कल्पित । आदेश – श्रमण को देने के लिए कल्पित । समादेश – निर्ग्रन्थ को देने के लिए कल्पित ।

उद्दिष्ट, उद्देशिक – छिन्न और अछिन्न । छिन्न – यानि हंमेशा किया गया यानि जो बचा हे उसमें से देने के लिए अलग नीकाला हो वो । अछिन्न – अलग न नीकाला हो लेकिन उसमें से भिक्षाचरों को देना ऐसा उद्देश रखा हो। छिन्न और अछिन्न दोनों में द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव ऐसे आठ भेद होते हैं । कृत उद्देशिक, छिन्न और अछिन्न दोनों में द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव ऐसे आठ भेद । कर्म उद्देशिक ऊपर के अनुसार आठ भेद । द्रव्य अछिन्न-बची

हुई चीजें देना तय करे । क्षेत्रअछिन्न – घर के भीतर रहकर या बाहर रहकर देना । काल अछिन्न – जिस दिन बचा हो उसी दिन या कोई भी दिन देने का तय करे । भावअछिन्न – गृहनायक – घर के मालिक देनेवाले के घर की स्त्री आदि को बोले कि, तुम्हें पसंद हो तो दो वरना मत दो । द्रव्यछिन्न – कुछ चीज या इतनी चीजें देने का तय किया हो। क्षेत्रछिन्न – घर के भीतर से या बाहर से किसी भी एक स्थान पर ही देने का तय किया हो । काल छिन्न – कुछ समय से कुछ समय तक ही देने का तय किया हो वो । भावछिन्न – तुम चाहो उतना ही देना । ऐसा कहा हो वो ।

ओघ औद्देशिक का स्वरूप-अकाल पूरा हो जाने के बाद किसी गृहस्थ सोचे कि, 'हम मुश्किल से जिन्दा रहे, तो रोज कितनी भिक्षा देंगे ।' पीछले भव में यदि न दिया होता तो इस भव में नहीं मिलता, यदि इस भव में नहीं देंगे तो अगले भव में भी नहीं मिलेगा । इसलिए अगले भव में मिले इसके लिए भिक्षुक आदि को भिक्षा आदि देकर शुभकर्म का उपार्जन करे । इस कारण से घर की मुखिया स्त्री आदि जितना पकाते हो उसमें धूतारे, गृहस्थ आदि आ जाए तो उन्हें देने के लिए चावल आदि ज्यादा पकाए । इस प्रकार रसोई पकाने से उनका ऐसा उद्देश नहीं होता कि, 'इतना हमारा और इतना भिक्षुक का ।' विभाग रहित होने से इसे ओघ औद्देशिक कहते हैं ।

छद्मस्थ साधु को 'यह आहारादि ओघ औद्देशिक के या शुद्ध आहारादि हैं' उसका कैसे पता चले ? उपयोग रखा जाए तो छद्मस्थ को भी पता चल सके कि, 'यह आहार ओघ औद्देशिक है या शुद्ध है ।' यदि भिक्षा देने के संकल्प पूर्वक ज्यादा पकाया हो तो प्रायः गृहस्थ देनेवाले की इस प्रकार की बोली, चेष्टा आदि हो । किसी साधु भिक्षा के लिए घर में प्रवेश करे तब घर का नायक अपनी पत्नी आदि के पास भिक्षा दिलाते हुए कहे या स्त्री बोले कि रोज की तय करने के अनुसार पाँच लोगों को भिक्षा दी गई है । या भिक्षा देते समय गिनती के लिए दीवार पर खड़ी या कोयले से लकीरे बनाई हो या बनाती है, या तो 'यह एक को दिया ।' यह दूसरे को दिया रखा, उसमें से देना लेकिन इसमें से मत दे । या घर में प्रवेश करते ही साधु को सुनाई दे कि, 'इस रसोई में से भिक्षाचर को देने के लिए इतनी चीजें अलग करो ।' इस प्रकार बोलते हुए सुनने से, दीवार पर की लकीरे आदि पर छद्मस्थ साधु – यह आहार ओघ औद्देशिक है ।' इत्यादि पता कर सके और ऐसी भिक्षा ग्रहण न करे । यहाँ वृद्ध सम्प्रदाय से इतना ध्यान में रखो कि – उद्देश अनुसार देने की भिक्षा देने के बाद या उद्देश अनुसार अलग नीकाल लिया हो उसके अलावा बाकी रही रसोई में से साधु को वहोराना कल्पे, क्योंकि वो शुद्ध है ।

साधु को गोचरी के समय कैसा उपयोग रखना चाहिए ? गोचरी के लिए गए साधु ने शब्द, रूप, रस आदि में मूर्च्छा आसक्ति नहीं करनी चाहिए । लेकिन उद्गम आदि दोष की शुद्धि के लिए तैयार रहना, गाय का बछड़ा जैसे अपने खाण पर लक्ष्य रखता है ऐसे साधु को आहार की शुद्धि पर लक्ष्य रखना चाहिए ।

उद्दिष्ट – द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव इन चारों में देने का तय किया हो वो न कल्पे, उसके अलावा कल्पे । कुछ लोगों को देना और कुछ को न देना इस प्रकार बँटवारा किया हो तो उसमें से कोई संकल्प में साधु आ जाए तो वो न कल्पे । साधु न आए तो कल्पे । ओघ औद्देशिक या विभाग औद्देशिक चीज में यदि गृहस्थ अपना संकल्प कर दे तो वो चीज साधु को कल्पे । लेकिन कर्म औद्देशिक में यावदर्थिक किसी भी भिक्षुओं को छोड़कर दूसरे प्रकार के कर्म औद्देशिक में अपना संकल्प कर देने के बाद भी साधु को सहज भी न खपे ।

आधाकर्म और औद्देशिक यह दो दोष एक जैसे दिखते हैं, तो फिर उसमें क्या फर्क ? जो पहले से साधु के लिए बनाया हो उसे आधाकर्मी कहते हैं और कर्म औद्देशिक में तो पहल पहले अपने लिए चीज बनाई है, लेकिन फिर साधु आदि को देने के लिए उसे पाक आदि का संस्कार करके फिर से बनाए उसे कर्म औद्देशिक कहते हैं ।

सूत्र – २७३-२९४

पूतिकर्म दो प्रकार से हैं । एक सूक्ष्मपूति और दूसरी बाहर पूति । सूक्ष्मपूति आगे बताएंगे । बादरपूति दो प्रकार से । उपकरणपूति और भक्तपानपूति ।

पूतिकर्म – यानि शुद्ध आहार के आधाकर्मी आहार का मिलना । यानि शुद्ध आहार भी अशुद्ध बनाए । पूति चार प्रकार से । नामपूति, स्थापनापूति, द्रव्यपूति और भावपूति । नामपूति – पूति नाम हो वो, स्थापनापूति –

पूति स्थापन की हो वो । द्रव्यपूति – गोबर, विष्टा आदि बदबूवाले – अशुचि चीजें । भावपूति – दो प्रकार से । सूक्ष्म भावपूति और बादर भावपूति । उन हरएक के उपर बताए हुए दो भेद – उपकरण और भक्तपान, ऐसे चार प्रकार से भावपूति । जो द्रव्य भाव को बूरे बनाए वो द्रव्य उपचार से भावपूति कहलाते हैं ।

उपकरण बादरपूति – आधाकर्मी चूल्हे पर पकाया हुआ या रखा हुआ या आधाकर्मभाजन, कड़छी, चमचे आदि में रहा शुद्ध आहार आधाकर्मी उपकरण के संसर्गवाला होने से वो उपकरण बादरपूति कहलाता है । चूल्हा आदि पकाने के साधन होने से उपकरण कहलाते हैं । ऐसा दोषवाला आहार साधु को न कल्पे । लेकिन उस शुद्ध आहार को वो उपकरण आदि पर से लेकर गृहस्थ ने अपने लिए कहीं ओर रखा हो तो वो आहारादि साधु को कल्पे

भक्तपान बादरपूति – आधाकर्मी अंगारे पर जीरु, हिंग, राई आदि ड़ालकर जलाने से जो धुआँ हो उस पर उल्टा बरतन रखकर बरतन धुएं की वासनावाला किया हो यानि बघार किया हो तो उस आधाकर्मी बरतन आदि में शुद्ध आहार ड़ाला हो या तो आधाकर्मी आहार से खरड़ित हाथ या चम्मच आदि से दिया गया शुद्ध आहार, वो भक्तपान बादरपूति दोषवाला गिना जाता है । ऐसा आहार साधु को न कल्पे। सूक्ष्मपूति –आधाकर्मी सम्बन्धी ईंधन – लकड़ियाँ, अंगारे आदि या उसका धुँआ, बदबू आदि शुद्ध आहारादि को लगे तो सूक्ष्मपूति । सूक्ष्मपूति वाला अकल्प्य नहीं होता क्योंकि धुँआ, बदबू सकल लोक में फैल जाए, इसलिए वो सूक्ष्मपूति टाल देना नामुमकीन होने से उसका त्याग करना आगम में नहीं कहा । शिष्य कहते हैं कि 'सूक्ष्मपूति नामुमकीन परिहार क्यों? तुमने जो जिस पात्र में आधाकर्मी आहार ग्रहण किया हो तो आधाकर्मी आहार पात्र में से निकाल दिया जाए या ऊंगली या हाथ पर चिपका हुआ भी निकाल दिया जाए उसके बाद वो पात्र तीन बार पानी से धोए बिना उसमें शुद्ध आहार ग्रहण किया जाए तो उसे सूक्ष्मपूति मानो, तो यह सूक्ष्मपूति दोष उस पात्र को तीन बार साफ करने से दूर कर सकेंगे । इसलिए सूक्ष्मपूति मुमकीन परिहार बन जाएगा । आचार्य शिष्य को कहते हैं कि, 'तुम जो सूक्ष्मपूति मानने का कहते हो, वो सूक्ष्मपूति नहीं है लेकिन बादरपूति ही दोष रहता है । क्योंकि साफ किए बिना के पात्र में उस आधाकर्मी के स्थूल अवयव रहे हो और फिर केवल तीन बार पात्र साफ करने से सम्पूर्ण निरवयव नहीं होता, उस पात्र में बदबू आती है । बदबू भी एक गुण है और गुण द्रव्य बिना नहीं रह सकते । इसलिए तुम्हारे कहने के अनुसार तो भी सूक्ष्मपूति नहीं होगी । इसके अनुसार कि इसलिए सूक्ष्मपूति समझने के समान है लेकिन उसका त्याग नामुमकीन है । व्यवहार में भी दूर से अशुचि की बदबू आ रही हो तो लोग उसको बाध नहीं मानते, ऐसे चीज का परिहार नहीं करते । यदि अशुचि चीज किसी को लग जाए तो उस चीज का उपयोग नहीं करते, लेकिन केवल बदबू से उसका त्याग भी नहीं किया जाता । झहर की बदबू दूर से आए तो पुरुष मर नहीं जाता, उसी प्रकार बदबू, धुँआ आदि से सूक्ष्मपूति बने आहार संयमी को त्याग करना योग्य नहीं होता, क्योंकि वो नुकसान नहीं करता ।

बादरपूति की शुद्धि कब होती है ? – ईंधन, धुँआ, बदबू के अलावा समझो कि एक में आधाकर्मी पकाया, फिर उसमें से आधाकर्मी निकाल दिया, उसे साफ न किया, इसलिए वो आधाकर्मी से खरड़ित है, उसमें दूसरी बार अशुद्ध आहार पकाया हो या शुद्ध सब्जी आदि रखा हो, फिर उस बरतन में से वो आधाकर्मी आहार आद दूर करने के बाद साफ किए बिना तीसरी बार भी ऐसा ही किया तो इस तीन बार पकाया पूतिकर्म हुआ । फिर उसे नीकालकर उसी बरतन में चौथी बार पकाया जाए तो वो आहारपूति नहीं होता इसलिए कल्पे । अब यदि गृहस्थी अपने उद्देश से उस बरतन को यदि नीरवयव करने के लिए तीन बार अच्छी प्रकार से साफ करके फिर उसमें पकाए तो वो सुतरां कल्पे, उसमें क्या शक ? जिस घर में आधाकर्मी आहार पकाया हो उस दिन उस घर का आहार आधाकर्मी माना जाता है । उसके बाद तीन दिन तक पकाया हुआ आहार पूति दोषवाला माना जाता है, इसलिए चार दिन तक उस घर का आहार न कल्पे, लेकिन पाँचवे दिन से उस घर का शुद्ध आहार कल्पे, फिर उसमें पूति की परम्परा नहीं चलती, लेकिन यदि पूति दोषवाला भाजन उस दिन या दूसरे दिन गृहस्थ ने अपने उपयोग के लिए तीन बार साफ करने के बाद उसमें शुद्ध आहार पकाया हो तो तुरन्त कल्पे ।

साधु के पात्र में शुद्ध आहार के साथ आधाकर्मी आहार आ गया हो तो वो आहार नीकालकर तीन बार

पानी से साफ करने के बाद दूसरा आहार लेना कल्पे ।

गोचरी के लिए गए साधु को घर में जमण आदि होने की निशानी दिखे तब मन में पूतिकर्म की शंका हो, चालाकी से गृहस्थ को या उसकी स्त्री आदि को पूछे कि, 'जमण हुए – साधु के लिए आहार आदि करने के कितने दिन हुए ?' या तो उनकी बात से पता कर ले । तीन दिन से ज्यादा दिन हुए हो तो पूति नहीं होती । इस प्रकार मालूम करते पूतिदोष का परिहार करके शुद्ध आहार की गवेषणा करे ।

सूत्र – २९५-३०१

मिश्रदोष तीन प्रकार से – १. किसी भी भिक्षाचर के लिए, २. धोखेबाज के लिए, ३. साधु के लिए । अपने लिए और यावत् साधु आदि के लिए पहले से इकट्ठा पकाया हो तो उसे मिश्रदोष कहते हैं । मिश्रदोषवाला आहार एक हजार घर में घूमते-घूमते जाए तो भी वो शुद्ध नहीं होता । मिश्रदोषवाला आहार पात्र में आ गया हो तो वो आहार ऊंगली या भस्म से दूर करने के बाद वो पात्र तीन बार धोने के बाद गर्मी में सूखाने के बाद उस पात्र में दूसरा आहार लाना कल्पे ।

किसी भी यानि सारे भिक्षुक के लिए किया हुआ पता करने का तरीका – 'किसी स्त्री किसी साधु को भिक्षा देने के लिए जाए वहाँ घर का मालिक या दूसरे किसी उसका निषेध करे कि इसमें मत देना । क्योंकि यह रसोई सबके लिए नहीं बनाई, इसलिए यह दूसरी रसोई जो सबको देने के लिए बनाई है उसमें से दो ।' पकाना शूरु करते हो वहीं कोई कहे कि, 'इतना पकाने से पूरा नहीं होगा, ज्यादा पकाओ कि जिससे सभी भिक्षुक को दे सके।' इस अनुसार सुना जाए तो पता चल सके कि, 'यह रसोई यावदर्थिक, सारे भिक्षुक के लिए मिश्र दोषवाली है । ऐसा आहार साधु को लेना न कल्पे ।

पाखंड़ी मिश्र – गृहनायक पकानेवाले को बोले कि, 'पाखंड़ी को देने के लिए साथ में ज्यादा पकाना' वो पाखंड़ी मिश्रदोषवाला हुआ । वो साधु को लेना न कल्पे, क्योंकि पाखंड़ी में साधु भी आ जाते हैं । श्रमणमिश्र अलग नहीं बताया क्योंकि पाखंड़ी कहने से श्रमण भी आ जाते हैं । निर्ग्रन्थ मिश्र – कोई ऐसा बोले कि, 'निर्ग्रन्थ साधु को देने के लिए साथ में ज्यादा पकाना' वो निर्ग्रन्थ मिश्र कहलाता है । वो भिक्षा भी साधु को न कल्पे ।

सूत्र – ३०२-३१०

गृहस्थने अपने लिए आहार बनाया हो उसमें से साधु को देने के लिए रख दे वो तो स्थापना दोषवाला आहार कहलाता है । स्थापना के छह प्रकार – स्वस्थान स्थापना, परस्थान स्थापना, परम्पर स्थापना, अनन्तर स्थापना, चिरकाल स्थापना और इत्वरकाल स्थापना । स्वस्थान स्थापना – आहार आदि जहाँ तैयार किया हो वहीं चूल्हे पर साधु को देने के लिए रख दे । परस्थान स्थापना – जहाँ आहार पकाया हो वहाँ से लेकर दूसरे स्थान पर छाजली, शीका आदि जगह पर साधु को देने के लिए रख दे । स्थापना रखने के द्रव्य दो प्रकार के होते हैं । कुछ विकारी और कुछ अविकारी । जिन द्रव्य का फर्क कर सके वो विकारी । दूध, ईख आदि दूध में से दहीं, छाछ, मक्खन, घी आदि होते हैं । ईख में से रस, शक्कर, मोरस, गुड़ आदि बनते हैं । जिस द्रव्य में फर्क नहीं पड़ता वो अविकारी । घी, गुड़ आदि । परम्परा स्थापना – विकारी द्रव्य, दूध, दहीं, छाछ आदि साधु को देने के लिए रखे । अनन्तर, स्थापना, अविकारी द्रव्य, घी, गुड़ आदि साधु को देने के लिए रखे । चिरकाल स्थापना – घी आदि चीज, जो उसके स्वरूप में फर्क हुए बिना जब तक रह सके तब तक साधु को देने के लिए रख दे । यह चिरकाल स्थापना उत्कृष्ट देश पूर्वकोटी साल तक होती है । यहाँ ध्यान में रखा जाए कि गर्भ से या जन्म से लेकिन आठ वर्ष पूरे न हुए हो उसे चारित्र नहीं होता और पूर्वक्रोड़ साल से ज्यादा आयुवाले को भी चारित्र नहीं होता । इस कारण से चिरकाल स्थापना उत्कृष्ट आठ वर्ष न्यून पूर्वक क्रोड़ वर्ष की शास्त्रकार ने बताई है ।

इत्वरकाल स्थापना – एक हार में रहे घर में से जब एक घर से साधु भिक्षा लेते हो तब या उस साधु के साथ दूसरा संघाटक साधु पास-पास के जिन दो घरों मे दोष का उपयोग रख सके ऐसा हो तो ऐसे दो घर में से गृहस्थ साधु को वहोराने के लिए आहार आदि हाथ में लेकर खड़ा रहे तो इत्वरकाल स्थापना । इस स्थापना में

उपयोग रहने से (यदि आधाकर्मादि दूसरे दोष न हो तो) साधु को कल्पे । इसमें स्थापना दोष नहीं माना जाता, लेकिन उसके अलावा तीसरे आदि घरमें आहार लेकर खड़े हो तो उस स्थापना दोषवाला आहार साधु को न कल्पे। साधु को देने के लिए आहारादि रखा हो और साधु न आए और गृहस्थ को ऐसा लगे कि – 'साधु नहीं आए तो हम उपयोग कर ले ।' इस प्रकार यदि वो आहारादि में अपने उपयोग का संकल्प कर दे तो ऐसा आहार साधु को कल्पे

सूत्र – ३११-३२५

साधु को वहोराने की भावना से आहार आदि जल्द या देर से बनाना प्राभृतिका कहते हैं । यह प्राभृतिका दो प्रकार की है । बादर और सूक्ष्म । उन दोनों के दो-दो भेद हैं । अवसर्पण यानि जल्दी करना और उत्सर्पण यानि देर से करना । वो साधु समुदाय आया हो या आनेवाले हो उस कारण से अपने यहाँ लिए गए ग्लान आदि अवसर देर से आता हो तो जल्द करे और पहले आता हो तो देर से करे ।

बादर अवसर्पण – साधु समुदाय विहार करते-करते अपने गाँव पहुँचे । श्रावक सोचता है कि, 'साधु महाराज थोड़े दिन में विहार करके वापस चले जाएंगे, तो मुजे लाभ नहीं मिलेगा । इसलिए मेरे पुत्र-पुत्री के ब्याह जल्द करूँ । जिससे वहोराने का लाभ मिले । ऐसा सोचकर जल्द ब्याह करे । उसमें जो रसोई आदि बनाई जाए वो साधु को न कल्पे । बादर उत्सर्पण – साधु के देर से आने का पता चले इसलिए सोचे कि ब्याह हो जान के बाद मुझे कोई लाभ नहीं होगा । इसलिए ब्याह देर से करूँ, जिससे मुझे भिक्षा आदि का लाभ मिले । ऐसा सोचकर शादी रूकवा दे । उसमें जो पकाया जाए वो साधु को न कल्पे ।

सूक्ष्म अवसर्पण – किसी स्त्री चरखा चलाती हो, खांड़ती हो या कोई काम करती हो तब बच्चा रोते-रोते खाना माँगे तब वो स्त्री बच्चे को कहे कि, अभी मैं यह काम कर रही हूँ, वो पूरा होने के बाद तुम्हें खाना दूँगी इसलिए रोना मत । इस समय गोचरी के लिए आए हुए साधु सुने तो वो उस घर में गोचरी के लिए न जाए । क्योंकि यदि जाए तो वो स्त्री गोचरी देने के लिए खड़ी हो, साधु को वहोराकर उस बच्चे को भी खाना दे इसलिए जल्दी हुआ । फिर हाथ आदि धोकर काम करने के लिए बैठे, इसलिए हाथ धोना आदि का आरम्भ साधु के निमित्त से हो या साधु ने न सुना हो और ऐसे ही चले गए तब बच्चा बोल उठे कि, 'क्यों तुम तो कहती थी न जल्द से खड़ी हो गई?' वहाँ सूक्ष्म अवसर्पण समझकर साधु को लेना नहीं चाहिए । ऐसे घर में साधु भिक्षा के लिए न जाए ।

सूक्ष्म उत्सर्पण – भोजन माँगनेवाले बच्चे को स्त्री कहे कि, 'अभी चूप रहो । साधु घूमते-घूमते यहाँ भिक्षा के लिए आएंगे तब खड़े होकर तुम्हें खाना दूँगी ।' यह सुनकर भी वहाँ साधु न जाए । इसमें जल्द देना था उस साधु के निमित्त से देर होती है और साधु के निमित्त से आरम्भ होता है । साधु ने सुना न हो और बच्चा साधु की ऊंगली पकड़कर अपने घर ले जाना चाहे, साधु उसे रास्त में पूछे । बच्चा – सरलता से बता दे । वहाँ सूक्ष्म उत्सर्पण प्राभृतिका दोष समझकर साधु को भिक्षा नहीं लेनी चाहिए ।

सूत्र – ३२६-३३३

साधु को वहोराने के लिए उजाला करके वहोराना यानि प्रादुष्करण दोष । प्रादुष्करण दोष दो प्रकार से । १. प्रकट करना और २. प्रकाश करना । प्रकट करना यानि, आहारादि अंधेरे में से लेकर उजाले में रखना । प्रकाश करना यानि, पकाना कि जो स्थान हो वहाँ जाली, दरवाजा आदि रखकर उजाला हो ऐसा करना । और रत्न, दीया, ज्योति से उजाला करके अंधेरे में रही चीज को बाहर लाना । इस प्रकार प्रकाश करके दी गई गोचरी साधु को न कल्पे । लेकिन यदि गृहस्थ ने अपने लिए प्रकट किया हो या उजाला किया हो तो साधु को वो भिक्षा कल्पे । प्रादुष्करण दोषवाली गोचरी शायद अनजाने में आ गई हो और फिर पता चले कि उस समय न हो या आधा लिया हो तो भी वो आहार परठवे फिर वो पात्र तीन बार पानी से धोकर, सूखाने के बाद उसमें दूसरा आहार लाना कल्पे शायद साफ करना रह जाए और उसमें दूसरा शुद्ध आहारा लाए तो यह विशुद्ध कोटि होने से बाध नहीं है ।

चूल्हा तीन प्रकार का होता है । अलग चूल्हा । जहाँ घूमाना हो वहाँ घूमा सके ऐसा, साधु के लिए बनाया

हो, साधु के लिए घर के बाहर उजाले में बनाया हुआ चूल्हा हो । चूल्हा अपने लिए बनाया हो लेकिन साधु को लाभ मिले इस आशय से अंधेरे में से वो चूल्हा बाहर उजाले में लाया गया हो । यदि गृहस्थ ने इन तीन प्रकार के चूल्हे में से किसी एक चूल्हे पर भोजन पकाया हो तो दो दोष लगे । एक प्रादुष्करण और दूसरा पूतिदोष । चूल्हा अपने लिए बनाया हो और वो चूल्हा बाहर लाकर पकाया हो तो एक ही प्रादुष्करण दोष लगे । चूल्हा बाहर रखकर रसोई तैयार की हो वहाँ साधु भिक्षा के लिए जाए और पूछे कि, 'बाहर रसोई क्यों की है ?' सरल हो तो बता दे कि, अंधेरे में तुम भिक्षा नहीं लोगे, इसलिए चूल्हा बाहर लाकर रसोई बनाई है ।' ऐसा आहार साधु को न कल्पे । यदि गृहस्थ ने अपने लिए भीतर गर्मी लग रही हो या मक्खियाँ हो इसलिए चूल्हा बाहर लाए हो और रसोई बनाई हो तो कल्पे ।

प्रकाश करने के प्रकार – दीवार में छिद्र करके । दरवाजा छोटा हो तो बड़ा करके । नया दरवाजा बनाकर। छत में छिद्र करके या उजाला आए ऐसा करके यानि नलिये हटा दे । दीप या बिजली करे । इस प्रकार गृहस्थ ने अपनी सुविधा के लिए किया हो तो वहाँ से आहार लेना कल्पे । लेकिन यदि साधु का लाभ मिले इसलिए किया हो तो साधु को आहार लेना न कल्पे । क्योंकि उजाला आदि करने से या भीतर से बाहर लाना आदि में पृथ्वीकायादि जीव की विराधना साधु निमित्त से हो इसलिए ऐसा प्रादुष्करण दोषवाला आहार साधु को नहीं वहोरना चाहिए ।

सूत्र – ३३४-३४३

साधु के लिए बिका हुआ लाकर देना क्रीतदोष कहलाता है । क्रीतदोष दो प्रकार से है । १. द्रव्य से और २. भाव से । द्रव्य के और भाव के दो-दो प्रकार – आत्मक्रीत और परक्रीत । परद्रव्यक्रीत तीन प्रकार से । सचित्त, अचित्त और मिश्र ।

आत्मद्रव्यक्रीत – साधु अपने पास के निर्माल्यतीर्थ आदि स्थान में रहे प्रभावशाली प्रतिमा की – १. शेष-चावल आदि, २. बदबू – खुशबू द्रव्य वासक्षेप आदि, ३. गुटिका रूप परावर्तनकारी जड़ीबुट्टी आदि, ४. चंदन, ५. वस्त्र का टुकड़ा आदि गृहस्थ को देने से गृहस्थ भक्त बने और आहारादि अच्छा और ज्यादा दे । वो आत्मक्रीत-द्रव्य माना जाता है । ऐसा आहार साधु को न कल्पे । क्योंकि चीज देने के बाद कोई बीमार हो जाए तो शासन का ऊड्डाह होता है । 'इस साधु ने हमें बीमार बनाया, कोई बीमार हो और अच्छा हो जाए तो कई लोगों को बताए कि, 'किसी साधु ने मुझे कुछ चीज दी, उसके प्रभाव से मैं अच्छा हो गया ।' तो इससे अधिकरण हो ।

आत्मभावक्रीत – आहारादि अच्छा मिले इस लिए व्याख्यान करे । वाक्छटा से सुननेवाले को खींचे, फिर उनके पास जाकर माँगे या सुननेवाले हर्ष में आ गए हो तब माँगे यह आत्मभावक्रीत । किसी प्रसिद्ध व्याख्यानकार उनके जैसे आकारवाले साधु को देखकर पूछे कि, 'प्रसिद्ध व्याख्यानकार कहलाते हैं वो तुम ही हो ?' तब वो चूप रहे । या तो कहे कि साधु ही व्याख्यान देते हैं दूसरे नहीं ।' इसलिए वो समझे कि, यह वो ही साधु है । गम्भीर होने से अपनी पहचान नहीं देते । इस प्रकार गृहस्थ भिक्षा ज्यादा और अच्छी दे । खुद समय नहीं होने के बावजूद भी समयरूप बताने से आत्मभावक्रीत होता है । कोई पूछे कि कुशल वक्ता क्या तुम ही हो ? तो कहे कि, भीखारा उपदेश देते हैं क्या ? या फिर कहे कि क्या मछवारा, गृहस्थ, ग्वाला, सिर मुंड़वाया हो और संसारी हो वो वक्ता होंगे? इस प्रकार जवाब दे इसलिए पूछनेवाला उन्हें वक्ता ही मान ले और ज्यादा भिक्षा दे । इसे भी आत्मभावक्रीत कहते हैं । इस प्रकार वादी, तपस्वी, निमित्तक के लिए भी ऊपर के अनुसार उत्तर दे । या आहारादि के लिए लोगों को कहे कि, 'हम आचार्य हैं, हम उपाध्याय हैं ।' आदि । इस प्रकार पाया हुआ आहार आदि आत्मभावक्रीत कहलाता है । ऐसा आहार साधु को न कल्पे ।

परद्रव्यक्रीत – साधु के लिए किसी आहारादि बिकता हुआ लाकर दे । वो सचित्त चीज देकर खरीदे, अचित्त चीज देकर खरीदे या मिश्र चीज देकर खरीदे उसे परद्रव्यक्रीत कहते हैं । इस प्रकार लाया गया आहार साधु को न कल्पे । परभावक्रीत जो तसवीर बताकर भिक्षा माँगनेवाले आदि हैं वो साधु के लिए अपनी तसवीर आदि बताकर चीज खरीदे तो वो परभावक्रीत है । इन दोष में तीन दोष लगते हैं । क्रीत, अभ्याहृत और स्थापना ।

सूत्र – ३४४-३५०

प्रामित्य यानि साधु के लिए उधार लाकर देना । ज्यादा लाना दो प्रकार से । १. लौकिक और २. लोकोत्तर। लौकिक में बहन आदि का दृष्टांत और लोकोत्तर में साधु-साधु में वस्त्र आदि का ।

कोशल देश के किसी एक गाँव में देवराज नाम का परिवार रहता था । उसको सारिका नाम की बीवी थी । एवं सम्मत आदि कईं लड़के और सम्मति आदि कईं लड़कियाँ थी । सभी जैनधर्मी थे । उस गाँव में शिवदेव नाम के शेठ थे । उन्हें शिवा नाम की बीवी थी । वो शेठ दुकान में सारी चीजें रखते थे और व्यापार करते थे । एक दिन उस गाँव में श्री समुद्रघोष नाम के आचार्य शिष्यों के साथ पधारे । सभी धर्म सुनाते हुए, उनके उपदेश से सम्मत नाम के लड़के ने आचार्य भगवंत के पास दीक्षा ली । सम्मत साधु गीतार्थ बने । अपने परिवार में कोई दीक्षा ले तो अच्छा, वो ही सही उपकार है । इस भावना से आचार्य भगवंत की आज्ञा लेकर अपने गाँव में आए । वहाँ किसी ने पूछा कि, 'देवशर्मा परिवार से कोई है क्या ?'

उस पुरुष ने कहा कि, उनके घर के सभी मर गए हैं, केवल सम्मति नाम की विधवा बेटी कुछ स्थान पर रहती है । साधु बहन के घर आए । भाई मुनि को आए हुए देखकर बहन को काफी आनन्द हुआ और ठहरने की जगह दी । फिर साधु के लिए पकाने के लिए जा रही थी वहाँ मुनि ने निषेध किया कि, 'हमारे लिए किया गया हमें न कल्पे ।' सम्मति के पास पैसे न होने के कारण शिवदेव शेठ की दुकान से दिन-ब-दिन दुगुना देने के कुबूल करते दो पल तैल लाई और साधु को वहोराया । भाई मुनि ने उसे निर्दोष समझकर ग्रहण किया । साधु के पास धर्म सुनने का आदि के कारण से दूसरों का काम करने के लिए नहीं जा सकी । दूसरे दिन भाई मुनिने विहार किया । इसलिए उन्हें बिदा करने गई और घर आते ही उनके वियोग के दुःख से दूसरे दिन भी पानी भरना आदि दूसरों का काम न हो सका । इसलिए चार पल्ली जितना तेल चड़ा । तीसरे दिन आठ पल्ली हुई । उतना एक दिन में काम करके पा न सकी । रोज खाने के निर्वाह भी मजदूरी करने पर था । इस प्रकार दिन ब दिन तेल का प्रमाण बढ़ता चला । कुछ घड़े जितना तेल का देवादार हो गया । शिवदेव शेठ ने कहा कि, 'या तो हमारा चड़ाया हुआ तेल दो या हमारे घर दासी बनकर रहो' सम्मति तेल न दे सकी इसलिए शेठ के घर दासी बनकर रही । शेठ का सारा काम करती है और दुःख में दिन गुझारती है । सम्मत मुनि कुछ वर्ष के बाद वापस उस गाँव में आ पहुँचे । उन्होंने घर में बहन को नहीं देखा, इसलिए वापस चले गए और रास्ते में बहन को देखा, इसलिए मुनि ने पूछा, बहन ने रोते हुए सारी बात बताई। यह सुनकर मुनि को खेद हुआ । मेरे निमित्त से उधार लाई हुई चीज मैंने प्रमाद से ली, जिससे बहन को दासी बनने का समय आया ।

लोकोत्तर प्रामित्य दो प्रकार से । कुछ समय के बाद वापस करने की शर्त से वस्त्र पात्र आदि साधु से लेना। कुछ समय के बाद वस्त्र आदि वापस देने का तय करके वस्त्र आदि लिया हो तो वो वस्त्र आदि वापस करने के समय में ही जीर्ण हो जाए, फट जाए या खो जाए या कोई ले जाए इसलिए उसे वापस न करने से तकरार हो, इसलिए इस प्रकार वस्त्र आदि मत लेना । उसके जैसा दूसरा देने का तय करके लिया हो, फिर उस साधु को उस वस्त्र से भी अच्छा वस्त्र देने से उस साधु को पसंद न आए । जैसा था ऐसा ही माँगे और इसलिए तकरार हो । इसलिए यह वस्त्रादि नहीं लेना चाहिए । वस्त्रादि की कमी हो तो साधु वापस करने की शर्त से ले या दे नहीं, लेकिन ऐसे ही ले या दे । गुरु की सेवा आदि में आलसी साधु को वैयावच्च करने के लिए वस्त्रादि देने का तय कर सके । उस समय वो वस्त्रादि खुद सीधा न दे, लेकिन आचार्य को दे । फिर आचार्य आदि बुज़ुर्ग वो साधु को दे । जिससे किसी दिन तकरार की संभावना न रहे ।

सूत्र – ३५१-३५६

साधु के लिए चीज की अदल-बदल करके देना परावर्तित । परावर्तित दो प्रकार से । लौकिक और लोकोत्तर । लौकिक में एक चीज देकर ऐसी ही चीज दूसरों से लेना । या एक चीज देकर उसके बदले में दूसरी चीज लेना । लोकोत्तर में भी ऊक्त अनुसार वो चीज देकर वो चीज लेनी या देकर उसके बदले में दूसरी चीज लेना

लौकिक तद्रव्य – यानि खराबी घी आदि देकर दूसरों के वहाँ से साधु के निमित्त से खुशबूदार अच्छा घी आदि लाकर साधु को देना । लौकिक अन्य द्रव्य यानि कोद्रव आदि देकर साधु निमित्त से अच्छे चावल आदि लाकर साधु को दे ।

वसंतपुर नगर में निलय नाम के शेठ रहते थे । उनकी सुदर्शना नाम की बीवी थी । क्षेमकर और देवदत्त नाम के दो पुत्र और लक्ष्मी नाम की बेटी थी । उसी नगर में दूसरे तिलक नाम के शेठ थे । उन्हें सुंदरी नाम की बीवी, धनदत्त नाम का बेटा और बंधुमती नाम की बेटी थी । लक्ष्मी का तिलक शेठ के बेटे धनदत्त के साथ ब्याह किया था । बंधुमती निलय शेठ के पुत्र देवदत्त के साथ ब्याह किया था । एक दिन उस नगर में श्री समितसूरि नाम के आचार्य पधारने से उनका उपदेश सुनकर क्षेमंकर ने दीक्षा ली । कर्मसंयोग से धनदत्त दरिद्र हो गया, जब कि देवदत्त के पास काफी द्रव्य था । श्री क्षेमंकर मुनि विचरते विचरते, उस नगर में आए । उनको सारे खबर मिले इसलिए सोचा कि, यदि मैं अपने भाई के वहाँ जाऊंगा तो मेरी बहन को लगेगा कि, गरीब होने से भाई मुनि मेरे घर न आए ओर भाई के घर गए । इसलिए उसके मन को दुःख होगा । ऐसा सोचकर अनुकंपा से भाई के वहाँ न जाते हुए, बहन के वहाँ गए । भिक्षा का समय होने पर बहन सोचने लगी कि, एक तो भाई, दूसरे साधु और तीसरे महेमान हैं । जब कि मेरे घर तो कोद्रा पकाए हैं, वो भाई मुनि को कैसे दे सकती हूँ ? शाला ड़ांगर के चावल मेरे यहाँ नहीं है । इसलिए मेरी भाभी के घर कोद्रा देकर चावल ले आऊं और मुनि को दूँ । इस प्रकार सोचकर कोद्रा बँधु पुरुष भाभी के घर गई और कोद्रा देकर चावल लेकर आई । वो चावल भाई मुनि को वहोराए ।

देवदत्त खाने के लिए बैठा तब बंधुमती ने कहा कि, 'आज तो कोद्रा खाना है' देवदत्त को पता नहीं कि 'मेरी बहन लक्ष्मी कोद्रा देकर चावल ले गई है ।' इसलिए देवदत्त समझा कि, 'इसने कृपणता से आज कोद्रा पकाए हैं ।' इसलिए देवदत्त गुस्से में आकर बंधुमती को मारने लगा और बोलने लगा कि, 'आज चावल क्यों नही पकाए ?' बंधुमती बोली कि, मुझे क्यों मारते हो ? तुम्हारी बहन कोद्रा रखकर चावल लेकर गई है । इस ओर धनदत्त खाने के लिए बैठा तब साधु को वहोराते हुए चावल बचे थे वो धनदत्त की थाली में परोसे । चावल देखते ही धनदत्त ने पूछा कि, 'आज चावल कहाँ से ?' लक्ष्मी ने कहा कि, 'आज मेरे भाई मुनि आए हैं, उन्हें कोद्रा कैसे दे सकती हूँ ?' इसलिए मेरी भाभी को कोद्रा देकर चावल लाई हूँ । साधु को वहोराते हुए बचे थे वो तुम्हें परोसे । यह सुनते ही धनदत्त को गुस्सा आया कि, 'इस पापिणी ने मेरी लघुता की ।' और लक्ष्मी को मारने लगा । लोगों के मुँह से दोनों घर का वृत्तांत क्षेमंकर मुनि को पता चला । इसलिए सबको बुलाकर प्रतिबोध करते हुए कहा कि, चीज की अदल-बदल करके लाया गया आहार साधु को न कल्पे । मैंने तो अनजाने में ग्रहण किया था लेकिन अदल-बदल कर लेने में कलह आदि दोष होने से श्री तीर्थंकर भगवंत ने ऐसा आहार लेने का निषेध किया है ।

लोकोत्तर परावर्तित – साधु आपस में वस्त्रादि का परिवर्तन करे उसे तद्रव्य परावर्तन कहते हैं । उससे किसी को ऐसा लगे कि, 'मेरा वस्त्र प्रमाणसर और अच्छा था, जब कि यह तो बड़ा और जीर्ण है, मोटा है, कर्कश है, भारी है, फटा हुआ है, मैला है, ठंड़ रोक न सके ऐसा है, ऐसा समझकर मुझे दे गया और मेरा अच्छा वस्त्र लेकर गया । इसलिए आपस में कलह हो । एक को लम्बा हो और दूसरे का छोटा हो तो बाहर अदल-बदल न करनेवाले आचार्य या गुरु के पास दोनों ने बात करके अपने अपने वस्त्र रख देने चाहिए । इसलिए गुरु खुद ही अदल-बदल कर दे, जिससे पीछे से कलह आदि न हो । इस प्रकार कुछ वस्त्र देकर उसके बदले पात्रादि की अदल-बदल करे वो अन्य द्रव्य लोकोत्तर परावर्तित कहते हैं ।

सूत्र – ३५७-३७५

साधु को वहोराने के लिए सामने से लाया गया आहार आदि अभ्याहृत दोषवाला कहलाता है । साधु ठहरे हो उस गाँव में से या दूसरे गाँव से गृहस्थ साधु को देने के लिए भिक्षादि लाए उसमें कईं दोष रहे हैं । लाने का प्रकट, गुप्त आदि कईं प्रकार से होता है । मुख्यतया दो भेद – १. अनाचीर्ण और २. आचीर्ण । अनाचीर्ण यानि साधु को लेना न कल्पे उस प्रकार से सामने लाया हुआ ।

अनाचीर्ण के आठ प्रकार – साधु को पता न चले उस प्रकार से लाया हुआ । साधु को पता चले उस प्रकार से लाया हुआ । साधु को पता न चले उस प्रकार साधु रहे हैं उस गाँव से लाया हुआ । साधु को पता न चले उस प्रकार साधु ठहरे हैं । उसके अलावा दूसरे गाँव से लाया हुआ । साधु को पता न चले उस प्रकार साधु जिस देश में ठहरे हैं उसके अलावा दूसरे देश के दूसरे गाँव से लाया हुआ । (परगाँव से किस प्रकार लाए – १. पानी में उतरकर, २. पानी में तैरकर, ३. तरापे में बैठकर, ४. नाँव आदि में बैठकर लाया हुआ । जलमार्ग से लाने में अप्काय आदि जीव की विराधना हो, या उतरकर आने में पानी की गहराई का खयाल न हो तो डूब जाए, या तो जलचर जीव पकड़ ले या मगरमच्छ पानी में खींच ले, दलदल में फँस जाए आदि । इसलिए शायद मर जाए । जमीं मार्ग से पैदल चलकर, गाड़ी में बैठकर, घोड़े, खच्चर, ऊंट, बैल, गधे आदि बैठकर लाया हुआ । जमीं के मार्ग से आने में पाँव में काँटे लग जाए, कुत्ते आदि प्राणी काट ले, चलने के योग से बुखार आ जाए, चोर आदि लूँट ले, वनस्पति आदि की विराधना हो) साधु को पता चले उस प्रकार से दूसरे गाँव से लाया हुआ । साधु को पता चले उस प्रकार उसी गाँव से लाया हुआ ।

साधु गाँव में भिक्षा के लिए गए हो तब घर बन्ध होने से वहोराने का लाभ न मिला हो । रसोई न हुई हो इसलिए लाभ न मिला हो । रसोई पका रहे हो इसलिए लाभ न मिला हो । स्वजन आदि भोजन करते हो तो लाभ न मिला हो । साधु के जाने के बाद किसी अच्छी चीज आ गई हो इसलिए लाभ लेने का मन करे । साधु के जाने के बाद किसी अच्छी चीज आ गई हो इसलिए लाभ लेने का मन करे । श्राविका निद्रा में हो या किसी काम में हो आदि कारण से श्राविका आहार लेकर उपाश्रय में आए और बताए कि, इस कारण से मुझे लाभ नहीं मिला, इसलिए अब मुझे लाभ दो । ऐसा साधु को पता चले उस प्रकार से गाँव में से लाया हुआ कहते हैं । इस प्रकार बाहर गाँव से लाभ लेने की ईच्छा से आकर बिनती करे । उस साधु को पता चले उस प्रकार से दूसरे गाँव से लाया हुआ ।

यदि पीछे से अभ्याहृत का पता चले तो आहार लिया न हो तो परठवे । खा लिया हो तो कोई दोष नहीं है । जानने के बाद ले तो दोष के भागीदार बने ।

गीतार्थ साधु भगवंत ने जो लेने का आचरण किया हो उसे आचीर्ण कहते हैं । आचीर्ण दो प्रकार से । क्षेत्र की अपेक्षा से और घर की अपेक्षा से । क्षेत्र अपेक्षा से तीन भेद – उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य । क्षेत्र से उत्कृष्ट सौ हाथ तक । क्षेत्र से जघन्य, बैठे-बैठे या खड़े होकर हाथ से ऊपर रहा बरतन लेकर, ऊपर करके या उल्टा-पुल्टा कर दे तो बाकी का मध्यम । इसमें साधे का उपयोग रह सकता हो तो कल्पे ।

उत्कृष्ट सौ हाथ क्षेत्र की सँभावना – जहाँ कईं लोग खाने के लिए बैठे हों, बीच में लम्बी छींड़ी हो, धर्मशाला या वाड़ी हो वहाँ भोजन की चीजें, सौ हाथ प्रमाण दूर है । और वहाँ जाने में संघट्टा आदि हो जाए ऐसा होने से जा सके ऐसा न हो । तब सौ हाथ दूर रही चीज लाए तो वो साधु को लेना कल्पे । देनेवाला खड़ा हो या बैठा हो, तपेली आदि बरतन अपने हाथ में हो और उसमें से भोजन दे तो जघन्य क्षेत्र आचीर्ण कहलाता है । उसमें थोड़ी भी हिल-चाल रही है ।

जघन्य और उत्कृष्ट के बीच का मध्यम आचीर्ण कहलाता है । घर की अपेक्षा से – तीन घर तक लाया हुआ। एक साथ तीन घर हो, वहाँ एक घर में भिक्षा ले रहे हो तब और दूसरा संघाट्टक साधु दूसरे घर में एषणा का उपयोग रखते हो, तब तीन घर का लाया हुआ भी कल्पे । उसके अलावा आहार लेना न कल्पे ।

सूत्र – ३७६-३८५

साधु के लिए कपाट आदि खोलकर या तोड़कर दे । तो उद्भिन्न दोष । उद्भिन्न – यानि बँधक आदि तोड़कर या बन्ध हो तो खोले । वो दो प्रकार से । जार आदि पर बन्ध किया गया या ढ़ँकी हुई चीज उठाकर उसमें रही चीज देना । कपाट आदि खोलकर देना । ढक्कन दो प्रकार के – सचित्त मिट्टी आदि से बन्ध किया गया, बाँधा हुआ या ढ़ँका हुआ । अचित्त सूखा गोबर, कपड़े आदि से बाँधा हुआ ।

ढ़ँकी हुई चीज को खोलकर देने में छह काय जीव की विराधना रही है । जार आदि चीज पर पत्थर रखा हो, या सचित्त पानी ड़ालकर उससे चीज पर सील किया हो । जो लम्बे अरसे तक भी सचित्त रहे और फिर जीव वहाँ आकर रहे हो । साधु के लिए यह चीज खोलकर उसमें रहा घी, तेल आदि साधु को दे तो पृथ्वीकाय, अप्काय आदि नष्ट हो । उसकी निश्रा में त्रस जीव रहे हों तो उसकी भी विराधना हो । फिर से बन्ध करे उसमें पृथ्वीकाय, अप्काय, तेऊकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय आदि की विराधना हो । लाख से सील करे उसमें लाख गर्म करने से तेऊकाय की विराधना, जहाँ अग्नि हो वहाँ वायु यकीनन हो इसलिए वायुकाय की विराधना, पृथ्वी आदि में अनाज के दाने या त्रस जीव रहे हो तो वनस्पतिकाय और त्रसकाय की विराधना, पानी में ड़ाले तो अप्काय की विराधना । इस प्रकार छ काय की विराधना हो । चीज खोलने के बाद उसमें रही चीज पुत्र आदि को दे, बेचे या नया लेकर उसमें ड़ाले, इसलिए पापप्रवृत्ति साधु के निमित्त से हो, जार आदि सील न करे या खुला रह जाए तो उसमें चींटी, मक्खी, चूँहा आदि गिर जाए तो उसकी विराधना हो । अलमारी आदि खोलकर दिया जाए तो ऊपर के अनुसार दोष लगे, अलावा दरवाजा खोलते ही पानी आदि भरी हुई चीज भीतर हो तो गिर जाए या तूट जाए, पास में चूल्हा हो तो उसमें पानी जाए तो अग्निकाय और वायुकाय की विराधना हो, अलावा वहाँ रहे पृथ्वीकाय, अप्काय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय की भी विराधना हो । दरवाजा बन्द करने से छिपकली, चूँहा या किसी जीवजन्तु उसमें दब जाए या मर जाए । यह आदि संयम विराधना है । और फिर जार आदि खोलने से शायद वहाँ साँप, बिच्छु आदि हो तो खोलनेवाले को ड़ँस ले । इसलिए लोग बोले कि, यह साधु भक्तादि में आसक्त हुए, आगे-पीछे के अनर्थ का नहीं सोचते । इसलिए प्रवचन विराधना । कोई रोष में आकर साधु को मारे, कूटे तो उससे आत्म-विराधना । इसलिए साधुने – उद्भिन्न दोषवाली भिक्षा नहीं ग्रहण करनी चाहिए ।

सूत्र – ३८६-३९४

मालापहृत दो प्रकार से हैं – १. जघन्य और २. उत्कृष्ट । पाँव का तलवा ऊपर करके शीका आदि में रही चीज दे तो जघन्य और उसके अलावा कोठी बड़े घड़े आदि में से या सीड़ी आदि पर चड़कर लाकर दे तो उत्कृष्ट मालापहृत ।

यहाँ चार भेद भी बताए हैं । ऊर्ध्व-मालापहृत – शींकु, छाजली या मजले पर से लाकर दे वो । अधो-मालापहृत – भोंयरे में से लाकर दे वो । उभय-मालापहृत – ऊंची कोठी हो उसमें से चीज नीकालने से पाँव के तलवे से ऊंचे होकर फिर मुँड़कर चीज नीकाल दे वो । तिर्यक्-मालापहृत – जमीं पर बैठे-बैठे गोख आदि में से कष्टपूर्वक हाथ लम्बा करके चीज लेकर दे वो । मालापहृत भिक्षा ग्रहण करने में देनेवाले को माल-छत पर चड़ने से भोयतलवे में जाने से – उतरने से कष्ट होने से, चड़ते-ऊतरते समय शायद गिर जाए, एवं शीका आदि में खुद देख सके ऐसा न हो तो वहाँ शायद साँप आदि ड़ँस ले, तो जीव विराधना (संयम-विराधना) प्रवचन विराधना, आत्म विराधना आदि दोष रहे हैं ।

मालापहृत दोषवाली भिक्षा साधु को ग्रहण नहीं करनी चाहिए । क्योंकि शीका आदि पर से भिक्षा लेने के लिए पाँव ऊपर करने से या सीढ़ी चड़ने से पाँव खिसक जाए तो नीचे गिर जाए तो उसके हाथ-पाँव तूट जाए या मर जाए, नीचे चींटी आदि जीव-जन्तु हो तो दबने से मर जाए इसलिए संयम विराधना होती है । लोग नींदा करे कि, 'यह साधु ऐसे कैसे कि इसे नीचे गिराया ।' इसलिए प्रवचन विराधना और किसी गृहस्थ गुस्सा होकर साधु को मारे जिससे आत्मविराधना होती है ।

सूत्र – ३९५-४०६

दूसरों के पास से बलात्कार से जो अशन आदि छिनकर साधु को दिया जाए उसे आच्छेद्य दोष कहते हैं । आच्छेद्य तीन प्रकार से हैं । प्रभु-घर का नायक, स्वामिराजा या गाँव का मुखी, नायक और स्तेन – चोर । यह तीनों दूसरों से बलात्कार से छिनकर आहार आदि दे तो ऐसे अशन आदि साधु को लेना न कल्पे ।

प्रभु आछेद्य – मुनि का भक्त घर का नायक आदि अपने पुत्र, पुत्री, बीवी, बहू आदि से अशन आदि

छिनकर उनकी ईच्छा के खिलाफ साधु को दे । स्वामी अछिद्य – मुनि का भक्त गाँव का मालिक आदि अपने आश्रित की मालिक के अशन आदि छिनकर उनको मरजी के खिलाफ साधु को दे । स्तेन आछेद्य – साधु का भक्त या भावनावाला किसी चोर मुसाफिर से उनकी मरजी के खिलाफ अशन आदि छिनकर साधु को दे । ऐसा आहार आदि ग्रहण करने से उस चीज का मालिक साधु पर द्वेष रखे और इससे ताड़न मारण आदि का अवसर आए । इसलिए अच्छेद्य दोषवाली भिक्षा साधुने नहीं लेनी चाहिए ।

मालिक बलात्कार से अपने आश्रित आदि के पास से चीज लेकर साधु को दे तो चीज का मालिक नीचे के अनुसार व्यवहार करे । मालिक के प्रति गुस्सा हो और जैसे-तैसे बोलने लगे या साधु के प्रति गुस्सा हो । मालिक को कहे कि यह चीज दूध आदि पर मेरा हक्क है, क्यों बलात्कार से छिन लेते हो ? मैंने मेहनत करके बदले में यह दूध पाया है । मेहनत के बिना तुम कुछ नहीं देते आदि बोले । इसलिए आपस में झगड़ा हो, द्वेष बढ़े, ग्वाले आदि शेठ आदि के वहाँ धन आदि की चोरी करे । आदि साधु निमित्त से दोष लगे । मुनि के प्रति द्वेष रखे, मुनि को ताड़न करे या मार ड़ाले । चीज के मालिक को अप्रीति हो । वो चीज न मिलने से उसे अंतराय हो, इसलिए साधु को उसका दोष लगे । अलावा अदत्तादान का भी दोष लगे, इसलिए महाव्रत का खंड़न हो ।

दूसरे किसी समय साधु को देखने से उन्हें एसा लगे कि, 'ऐसे वेशवाले ने बलात्कार से मेरी चीज ले ली थी, इसलिए इनको नहीं देना चाहिए । इसलिए भिक्षा का विच्छेद होता है । उतरने के लिए स्थान दिया हो तो वो रोष में आने से साधु को वहाँ से नीकाल दे या कठोर शब्द सुनाए । आदि दोष रहे हैं । इस प्रकार गाँव का मालिक या चोर दूसरों से बलात्कार से लेकर भिक्षा दे तो वो भी साधु को न कल्पे ।

इसमें विशेषता इतनी कि किसी भद्रिक चोर ने साधु को देखते ही मुसाफिर के पास से हमारा भोजन आदि छिनकर साधु को दे । उस समय यदि वो मुसाफिर ऐसा बोले कि, अच्छा हुआ कि घी, खीचड़ी में गिर पड़ा । हमसे लेकर तुम्हें देते हैं तो अच्छा हुआ । हमें भी पुण्य का लाभ मिलेगा । इस प्रकार बोले तो साधु उस समय वो भिक्षा ग्रहण करे । लेकिन चोर के जाने के बाद साधु उन मुसाफिर को कहे कि, यह तुम्हारी भिक्षा तुम वापस ले लो, क्योंकि उस समय चोरों के भय से भिक्षा ली थी, न लेते तो शायद चोर ही हमें सज़ा देता । इस प्रकार कहने से यदि मुसाफिर ऐसा कहे कि यह भिक्षा तुम ही रखो । तुम ही उपयोग करो, तुम ही खाओ, हमारी अनुमति है । तो उस भिक्षु साधु को खाना कल्पे । यदि अनुमति न दे तो खाना न कल्पे ।

सूत्र – ४०७-४१७

मालिक ने अनुमति न दी हो तो दिया गया ग्रहण करे वो अनिसृष्ट दोष कहलाता है । श्री तीर्थंकर भगवंतने बताया है कि, राजा अनुमति न दिया हुआ भक्तादि साधु को लेना न कल्पे । लेकिन अनुमति दी हो तो लेना कल्पे । अनुमति न दिए हुए कईं प्रकार के हैं । वो १. मोदक सम्बन्धी, २. भोजन सम्बन्धी, ३. शेलड़ी पीसने का यंत्र, कोला आदि सम्बन्धी, ४. ब्याह आदि सम्बन्धी, ५. दूध, ६. दुकान घर आदि सम्बन्धी । आम तोर पर अनुमति न देनेवाले दो प्रकार के हैं – १. सामान्य अनिसृष्ट सभी न अनुमति न दि हुई और २. भोजन अनिसृष्ट – जिसका हक हो उसने अनुमति न दी हो । सामान्य अनिसृष्ट – चीज के कईं मालिक हो ऐसा । उसमें से एक देता हो लेकिन दूसरे को आज्ञा न हो; ऐसा सामान्य अनिसृष्ट कहलाता है । भोजन अनिसृष्ट – जिसके हक का हो उसकी आज्ञा बिना देते हो तो उसे भोजन अनिसृष्ट कहते हैं । इसमें चोल्लक भोजन अनिसृष्ट कहलाता है और बाकी मोदक, यंत्र, संखड़ी आदि सामान्य अनिसृष्ट कहलाते हैं ।

भोजन अनिसृष्ट – दो प्रकार से । १.छिन्न और २.अछिन्न । छिन्न यानि खेत आदि में काम करनेवाले मजदूर आदि के लिए भोजन बनवाया हो और भोजन सबको देने के लिए अलग-अलग करके रखा हो, बाँटा हुआ। अछिन्न – यानि सबको देने के लिए इकट्ठा हो लेकिन बँटवारा न किया हो । बँटवारा न किया हो उसमें – सबने अनुमति दी और सबने अनुमति नहीं दी । सबने अनुमति दी हो तो साधु को लेना कल्पे । सभी ने अनुमति न दी हो तो न कल्पे। बाँटा हुआ –उसमें जिसके हिस्से में आया हो वो व्यक्ति साधु को दे तो साधु को कल्पे । उसके

अलावा न कल्पे ।

सामान्य और भोजन अनिसृष्ट में फर्क – सामान्य और भोजन अनिसृष्ट में आम तोर पर पिंड़ का ही अधिकार है, इसलिए कोई भी भोजन हो, जिसके भीतर उन चीज पर हर कोई की मालिकी समान और मुखिया हो तो सामान्य कहलाता है, जब कि भोजन अनिसृष्ट में उस चीज का राजा, परिवार आदि का एक मौलिक और गौण से यानि एक की प्रकार दूसरे भी काफी होते हैं । सामान्य अनिसृष्ट में पहले हरएक स्वामी ने भोजन देने की हा न कही हो लेकिन पीछे से आपस में समझाने से अनुज्ञा दे तो वो आहार साधु को लेना कल्पे । यदि एक को वहोराने के लिए अनुमति देकर सर्व मालिक कहीं और गए हों उस कारण से उनकी मालिक की गैर मोजूदगी में भी वो भिक्षा ग्रहण कर सके ।

हाथी को खाने के लिए चीज बनाई हो । हाथी का महावत् वो चीज मुनि को दे तो वो लेना न कल्पे । यदि ग्रहण करे तो इस प्रकार दोष लगे । हाथी का भोजन राजा का भोजन इसलिए वो राजपिंड़ कहलाता है । राजा की आज्ञा नहीं होने से मुनि ने लिया हो तो राजा साधु को कैद करे, मारे या कपड़े उतार ले । हाथी के आहार में इतना अंतराय लगे । इसलिए अंतरायजन्य पाप लगे । हाथी के महावत् पर राजा क्रोधित हो । मेरी आज्ञा के सिवा साधु को क्यों दिया ? इसलिए शायद महावत को अनुमति दे कि दंड़ करे, साधु के कारण से महावत की नौकरी चली जाए । अदत्तादान का दोष साधु को लगे । महावत अपना पिंड़ भी हाथी के सामने दे तो हाथी को ऐसा लगे कि, मेरे भोजन में से यह मुंड़िया हररोज ग्रहण करता है । इस कारण से हाथी क्रोधित हो और रास्ते में किसी समय साधु को देखते ही साधु को मार ड़ाले या उपाश्रय तोड़ दे ।

सूत्र – ४१८-४२२

पहले अपने लिए रसोई करने की शुरूआत की हो, फिर साधु आए हैं जानकर रसोई में दूसरा ड़ाला जाए तो अध्यवपूरक दोषवाला कहलाता है । प्रथम खुद के लिए पकाने की शुरूआत की हो फिर पीछे से तीनों प्रकार में से किसी के लिए चावल आदि ओर ड़ाले तो वो आहारादि अध्यवपूरक दोषवाला होता है । अध्यवपूरक के तीन प्रकार हैं – स्वगृह यावदर्थिक मिश्र, स्वगृह साधु मिश्र, स्वगृह पाखंड़ी मिश्र । स्वगृह यावदर्थिक मिश्र – स्वगृह यानि अपने घर के लिए और यावदर्थिक यानि किसी भिक्षु के लिए । पहले अपने लिए पकाने की शुरूआत की हो और फिर गाँव में कईं याचक, साधु, पाखंड़ी आदि आने का पता चलते ही, पहले शुरू की गई रसोई में ही पानी, चावल आदि ड़ालकर सबके लिए बनाया गया भोजन । स्वगृह साधु मिश्र – पहले अपने लिए पकाने की शुरूआत की हो फिर साधु के आने का पता चलते , रसोई में चावल, पानी ड़ालकर अपने लिए और साधु के लिए रसोई करे, स्वगृह पाखंड़ी मिश्र –पहले अपने लिए पकाने की शुरूआत की हो फिर पाखंड़ी को देने के लिए पीछे से ओर ड़ालके तैयार किया गया भोजन । यावदर्थिक के लिए ड़ाला हुआ भोजन उसमें से दूर किया जाए तो बचा हुआ भोजन साधु को लेना कल्पे, जब कि स्वगृह और साधु मिश्र एवं स्वगृह और पाखंड़ी मिश्र में ड़ाला हुआ अलग करने के बावजूद बचे हुए भोजन में से साधु को लेना न कल्पे, क्योंकि वो सारा आहार पूतिदोष से दोषित माना जाता है ।

मिश्रदोष और अध्यवपूरक दोष में क्या फर्क ? मिश्र नाम के दोष में पहले से ही अपने लिए और भिक्षु आदि दोनों का उद्देश रखकर पकाया हो, जब कि इस अध्यवपूरक नाम के दोष में पहले गृहस्थ अपने लिए पकाने की शुरूआत करे और फिर उसमें भिक्षु आदि के लिए ओर ड़ाले ।

मिश्र और अध्यवपूरक की पहचान – मिश्र और अध्यवपूरक दोष की परीक्षा रसोई के विचित्र परिणाम पर से की जाती है । जैसे कि मिश्र जात में तो पहले से ही साधु के लिए भी कल्पना होती है, इसलिए नाप जितने मसाले, पानी, अन्न आदि चाहिए ऐसा ड़ालकर ज्यादा पकाया हो, इसलिए भोजन के सौष्ठव में क्षति नहीं होती । लेकिन घर के लोग कम हैं और इतना सारा खाना क्यों ? वो सोचने से मिश्रजात दोष का ज्ञान हो सकता है । जब कि अध्यवपूरक में पीछे से पानी, मसाले, धान्य, सब्जी आदि मिलाने से चावल अर्धपक्व, दाल आदि के वर्ण, गंध,

रस में फर्क – पतलेपन आदि का फर्क होता है, इसलिए उस प्रकार से अध्यवपूरक दोष का निर्णय कर सकते हैं ।

इस प्रकार उद्गम के सोलह दोष हुए । उसमें कुछ विशोधि कोटि के हैं और कुछ अविशोधि कोटि के हैं ।

सूत्र – ४२३-४२८

विशोधि कोटि – यानि जितना साधु के लिए सोचा या पकाया हो उतना दूर किया जाए तो बाकी बचा है उसमें से साधु ग्रहण कर सके यानि साधु को लेना कल्पे ।

अविशोधि कोटि –यानि उतना हिस्सा अलग करने के बावजूद भी साधु ग्रहण न कर सके । यानि साधु को लेना न कल्पे । जिस पात्र में ऐसा यानि अविशोधि कोटि आहार ग्रहण हो गया हो उस पात्र में से ऐसा आहार नीकालकर उस पात्र को भस्म आदि से तीन बार साफ करने के बाद उस पात्र में दूसरा शुद्ध आहार लेना कल्पे ।

आधाकर्म, सर्वभेद, विभाग उद्देश के अंतिम तीन भेद – समुद्देश, आदेश और समादेश । बादर भक्तपान पूति । मिश्रदोष के अंतिम दो भेद पाखंड़ी मिश्र और साधु मिश्र, बादर प्राभृतिका, अध्यवपूरक के अंतिम दो स्वगृह पाखंड़ी अध्यवपूरक और साधु अध्यवपूरक छह दोष में से दश भेद अविशोधि कोटी के हैं । यानि उतना हिस्सा अलग करने के बावजूद भी बाकी का साधु को लेना या खाना न कल्पे । बाकी के दूसरे दोष विशोधि–कोटि के हैं ।

उद्देशिक के नौ भेद–पूतिदोष, यावदर्थिक मिश्र, यावदर्थिक अध्यवपूरक, परिवर्तित, अभ्याहृत, मालापहृत, आच्छेद्य, अनिसृष्ट, पादुष्करण क्रीत, प्रामित्य सूक्ष्म प्राभृतिका, स्थापना के दो प्रकार । यह सभी विशोधि कोटि है।

भिक्षा के लिए घूमने से पात्र में पहले शुद्ध आहार ग्रहण किया हो, उसके बाद अनाभोग आदि के कारण से विशोधि कोटि दोषवाला ग्रहण किया हो, पीछे से पता चले कि यह तो विशोधिकोटि दोषवाला था, तो ग्रहण किए हुए आहार बिना यदि गुझारा हो सके तो वो आहार परठवे । यदि गुझारा न हो सके तो जितना आहार विशोधि दोषवाला था उसे अच्छी प्रकार से देखकर नीकाल दे । अब यदि समान वर्ण और गंधवाला हो यानि पहचान सके ऐसा न हो या इकट्ठा हो गया हो या तो प्रवाही हो तो वो सारा परठवे । फिर भी किसी सूक्ष्म अवयव पात्र में रह गए हो तो भी दूसरा शुद्ध आहार उस पात्र में लाना कल्पे । क्योंकि वो आहार विशोधिकोटि का था इसलिए ।

सूत्र – ४२९

विवेक (परठना) चार प्रकार से – द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव । द्रव्य विवेक – दोषवाले द्रव्य का त्याग । क्षेत्र विवेक – जिस क्षेत्र में द्रव्य का त्याग करे वो, काल विवेक, पता चले कि तुरन्त देर करने से पहले त्याग करे । भाव विवेक – भाव से मूर्च्छा रखे बिना उसका त्याग करे वो या असठ साधु जिन्हें दोषवाला देखके उसका त्याग करे । पात्र में इकट्ठी हुई गोचरी बिना गुझारा हो सके ऐसा न हो तो सारा शुद्ध और दोषवाले आहार का त्याग करे । गुझारा हो सके ऐसा न हो तो दोषवाले आहार का त्याग करे ।

सूत्र – ४३०-४३२

अशुद्ध आहार त्याग करने में नीचे के अनुसार चतुर्भंगी बने । शुष्क और आर्द्र दोनो समान चीज में गिरा हुआ और अलग चीज में गिरा हुआ उसके चार प्रकार हैं – १. एकदम शुष्क, २. शुष्क में आर्द्र, ३. आर्द्र में शुष्क, ४. आर्द्र में आर्द्र । शुष्क से शुष्क – शुष्क चीज में दूसरी चीज हो, यानि वाल, चने आदि सूखे हैं । वाल में चने हो या चने में वाल हो तो वो सुख से अलग कर सकते हैं । चने में चने या वाल में वाल हो तो जितने दोषवाले हो उतने कपट बिना अलग कर देना, बाकी के कल्पे । शुष्क में आर्द्र – शुष्क चीज में आर्द्र चीज हो, यानि वाल, चने आदि में ओसामण, दाल आदि गिरा हो तो पात्र में पानी ड़ालकर पात्र झुकाकर सारा प्रवाही नीकाल दे । बाकी का कल्पे। आर्द्र में शुष्क – आर्द्र चीज में शुष्क चीज गिरी हो । यानि ओसमण, दूध, खीर आदि में चने, वाल आदि गिरे हो तो पात्र में हाथ आदि ड़ालकर चने नीकाल सके उतना नीकालना, बचा हुआ कल्पे । आर्द्र में आर्द्र – आर्द्र चीज में आर्द्र चीज गिर गई हो यानि ओसामण आदि में ओसामण गिरा हो तो, यदि वो द्रव्य दुर्लभ हो यानि दूसरा मिल

सके ऐसा न हो और उस चीज की जरुरत हो तो जितना दोषवाला हो उतना नीकाल दे, बाकी का कल्पे ।

सूत्र – ४३३

निर्वाह हो सके ऐसा न हो तो ये चार भेद का उपयोग कर सके । यदि गुझारा हो सके ऐसा हो या दूसरा शुद्ध आहार मिल सके ऐसा हो तो पात्र में आया हुआ सबकुछ परठ देना चाहिए । गुझारा हो सके ऐसा हो तो पात्र में विशोधि कोटि से छूए हुए सभी आहार का त्याग करना, गुझारा न हो सके ऐसा हो तो चार भेद में बताने के अनुसार त्याग करे । कपटरहित जो त्याग करे वो साधु शुद्ध रहते हैं यानि उसे अशुभकर्म का बँध नहीं होता, लेकिन मायापूर्वक त्याग किया हो तो वो साधु कर्मबँध से बँधे जाते हैं । जिस क्रिया में मायावी बँधते हैं उसमें माया रहित शुद्ध रहते हैं ।

सूत्र – ४३४-४३५

अब दूसरी प्रकार से विशोधिकोटि अविशोधिकोटि समझाते हैं । कोटिकरण दो प्रकार से – उद्गमकोटि और विशोधिकोटि । उद्गमकोटि छह प्रकार से, आगे कहने के अनुसार – विशोधिकोटि कईं प्रकार से ९-१८-२७-५४-९० और २७० भेद होते हैं । ९-प्रकार – वध करना, करवाना और अनुमोदना करना । पकाना और अनुमोदना करना । बिकता हुआ लेना, दिलाना और अनुमोदना करना । पहले छह भेद अविशोधिकोटि के और अंतिम तीन विशोधिकोटि के समझना । १८-प्रकार – नव कोटि को किसी राग से या किसी द्वेष से सेवन करे । ९ X २ = १८, २७ प्रकार (नव कोटि का) सेवन करनेवाला किसी मिथ्यादृष्टि निःशंकपन सेवन करे, किसी सम्यग्दृष्टि विरतिवाला आत्मा अनाभोग से सेवन करे, किसी सम्यग्दृष्टि अविरतिपन के कारण से गृहस्थपन का आलम्बन करते हुए सेवन करे । मिथ्यात्व, अज्ञान और अविरति रूप से सेवन करते हुए ९ X ३ = २७ प्रकार बने । ५४ प्रकार – २७ प्रकार को कोइ राग से और कोइ द्वेष से सेवन करे, २७ X २ = ५४ प्रकार हो । ९० प्रकार – नौ कोटि कोई पुष्ट आलम्बन से अकाल अरण्य आदि विकट देश काल में क्षमादि दश प्रकार के धर्म का पालन करने के लिए सेवन करे । ९ X १० = ९० प्रकार हो । २७० प्रकार – इसमें किसी विशिष्ट चारित्र निमित्त से सेवन करे, किसी चारित्र में विशिष्ट ज्ञान निमित्त से सेवन करे, किसी चारित्र में खास दर्शन की स्थिरता निमित्त से दोष सेवन करे ९० X ३ = २७० प्रकार हो

सूत्र – ४३६

ऊपर कहने के अनुसार वो सोलह उद्गम के दोष गृहस्थ से उत्पन्न हुए मानना । यानि गृहस्थ करते हैं । अब कहा जाता है कि उस उद्भव के (१६) दोष साधु से होते समझना । यानि साधु खुद दोष उत्पन्न करते हैं ।

सूत्र – ४३७-४४२

उत्पादना के चार निक्षेप हैं । १. नाम उत्पादना, २. स्थापना उत्पादना, ३. द्रव्य उत्पादना, ४. भाव उत्पादना। नाम उत्पादना – उत्पादना ऐसा किसी का भी नाम होना वो । स्थापना उत्पादना – उत्पादना की स्थापना-आकृति हो वो । द्रव्य उत्पादना – तीन प्रकार से । सचित्त, अचित्त और मिश्र द्रव्य उत्पादना । भाव उत्पादना – दो प्रकार से । आगम भाव उत्पादना और नो आगम भाव उत्पादना ।

आगम से भाव उत्पादना – यानि उत्पादना के शब्द के अर्थ को जाननेवाले और उसमें उपयोगवाले । नो आगम से भाव उत्पादना – दो प्रकार से । प्रशस्त और अप्रशस्त – प्रशस्त अप्रशस्त उत्पादना यानि आत्मा को नुकसान करनेवाली – कर्मबँध करनेवाली उत्पादना । वो सोलह प्रकार की यहाँ प्रस्तुत है । वो इस प्रकार – धात्रीदोष – धात्री यानि बच्चे का परिपालन करनेवाली स्त्री । भिक्षा पाने के लिए उनके जैसा धात्रीपन करना । जैसे कि – बच्चे को खेलाना, स्नान कराना आदि । दूती दोष – भिक्षा के लिए परस्पर गृहस्थ के संदेश लाना – ले जाना। निमित्त दोष – वर्तमान, भूत और भावि के आठ प्रकार में से किसी भी निमित्त कहना । आजीविकादोष सामनेवाले के साथ अपने समान कुल, कला, जाति आदि जो कुछ हो वो प्रकट करना । वनीपकदोष – भिखारी

के जैसा दीन आचरण करना । चिकित्सा दोष – दवाई देना या बताना । क्रोधदोष – क्रोध करके भिक्षा लेना । मानदोष – मान करके भिक्षा लेना । मायादोष – माया करके भिक्षा लेना । लोभदोष – लोभ रखकर भिक्षा लेना । संस्तवदोष – पूर्व-संस्तव – माता आदि का रिश्ता बनाकर भिक्षा लेना, पश्चात् संस्तवदोष – श्वशूर पक्ष के सांस ससूर आदि के सम्बन्ध से भिक्षा लाना । विद्यादोषी – जिसकी स्त्री समान, देवी अधिष्ठिता हो उसे विद्या कहते हैं, उसके प्रयोग आदि से भिक्षा लेना । मंत्रदोष – जिसका पुरुष समान-देव अधिष्ठित हो उसे मंत्र कहते हैं उसके प्रयोग आदि से भिक्षा लेना । चूर्णदोष, सौभाग्य आदि करनेवाला चूर्ण आदि के प्रयोग से भिक्षा लेना । योगदोष – आकाश गमनादि सिद्धि आदिके प्रयोग से भिक्षा लेना । मूलकर्मदोष, वशीकरण, गर्भशाटन आदि मूलकर्मके प्रयोग से भिक्षा लेना । धात्रीपन खुद करे या दूसरों से करवाए, दूतीपन खुद करे या दूसरों से करवाए यावत् वशीकरणादि भी खुद करे या दूसरों से करवाए और उससे भिक्षा पाए तो 'धात्रीपिंड़', 'दूतीपिंड़' आदि उत्पादना के दोष कहलाते हैं।

सूत्र – ४४३-४४४

बच्चे की रक्षा के लिए रखी गई स्त्री धात्री कहलाती है । वो पाँच प्रकार की होती है । बच्चे को स्तनपान करवानेवाली, बच्चे को स्नान करवानेवाली, बच्चे को वस्त्र आदि पहनानेवाली, बच्चे खेलानेवाली और बच्चे को गोद में रखनेवाली, आराम करवानेवाली । हरएक में दो प्रकार । एक खुद करे और दूसरा दूसरों से करवाए ।

सूत्र – ४४५-४६२

पूर्व परिचित घर में साधु भिक्षा के लिए गए हो, वहाँ बच्चे को रोता देखकर बच्चे की माँ को कहे कि, यह बच्चा अभी स्तनपान पर जिन्दा है, भूख लगी होगी इसलिए रो रहा है । इसलिए मुझे जल्द वहोराओ, फिर बच्चे को खिलाना या ऐसा कहे कि, पहले बच्चे को स्तनपान करवाओ फिर मुझे वहोरावो, या तो कहे कि, अभी बच्चे को खिला दो फिर मैं वहोरने के लिए आऊंगा । बच्चे को अच्छी प्रकार से रखने से बुद्धिशाली, निरोगी और दीर्घ आयुवाला होता है, जब कि बच्चे को अच्छी प्रकार से नहीं रखने से मूरख बीमार और अल्प आयुवाला बनता है । लोगों में भी कहावत है कि पुत्र की प्राप्ति होना दुर्लभ है इसलिए दूसरे सभी काम छोड़कर बच्चे को स्तनपान करवाओ, यदि तुम स्तनपान नहीं करवाओगे तो मैं बच्चे को दूध पिलाऊं या दूसरों के पास स्तनपान करवाऊं । इस प्रकार बोलकर भिक्षा लेना वो धात्रीपिंड़ । इस प्रकार के वचन सुनकर, यदि वो स्त्री धर्मिष्ठ हो तो खुश हो । और साधु को अच्छा-अच्छा आहार दे, प्रसन्न हुई वो स्त्री साधु के लिए आधाकर्मादि आहार भी बनाए ।

वो स्त्री धर्म की भावनावाली न हो तो साधु के ऐसे वचन सुनकर साधु पर गुस्सा करे । शायद बच्चा बीमार हो जाए तो साधु की नींदा करे, शासन का ऊड्डाह करे, लोगों को कहे कि, उस दिन साधु ने बच्चे को बुलाया था या दूध पीलाया था या कहीं ओर जाकर स्तनपान करवाया था इसलिए मेरा बच्चा बीमार हो गया । या फिर कहे कि, यह साधु स्त्रीयों के आगे मीठा बोलता है या फिर अपने पति को या दूसरे लोगों को कहे कि, यह साधु बूरे आचरण वाला है, मैथुन की अभिलाषा रखता है । आदि बातें करके शासन की हीलना करे । धात्रीपिंड़ में यह दोष आते हैं।

भिक्षा के लिए घूमने से किसी घर में स्त्री को फिक्रमंद देखकर पूछे कि, क्यों आज फिक्र में हो ? स्त्री ने कहा कि, जो दुःख में सहायक हो उन्हें दुःख कहा हो तो दुःख दूर हो सके । तुम्हें कहने से क्या ? साधु ने कहा कि, मैं तुम्हारे दुःख में सहायक बनूँगा, इसलिए तुम्हारा दुःख मुझे बताओ । स्त्रीने कहा कि मेरे घर धात्री थी उसे किसी शेठ अपने घर ले गए, अब बच्चे को मैं कैसे सँभाल सकूँगी ? उसकी फिक्र है । ऐसा सुनकर साधु उससे प्रतिज्ञा करे कि, तुम फिक्र मत करना, मैं ऐसा करूँगा कि उस धात्री को शेठ अनुमति देंगे और वापस तुम्हारे पास आ जाएगी । मैं थोड़े ही समय में तुम्हें धात्री वापस लाकर दूँगा । फिर साधु उस स्त्री के पास से उस धात्री की उम्र, देह का नाप, स्वभाव, हुलिया आदि पता करके, उस शेठ के वहाँ जाकर शेठ के आगे धात्री के गुण-दोष इस प्रकार बोले की शेठ उस धात्री को छोड़ दे । छोड़ देने से वो धात्री साधु के प्रति द्वेष करे, उड्डाह करे या साधु को मार भी ड़ाले आदि दोष रहे होने से साधु को धात्रीपन नहीं करना चाहिए ।

यह क्षीर धात्रीपन बताया । उस अनुसार बाकी के चार धात्रीपन समझ लेना । बच्चों से खेलना आदि करने से साधु को धात्रीदोष लगता है ।

संगम नाम के आचार्य थे । वृद्धावस्था आने से उनका जंघाबल कमझोर होने से यानि चलने की शक्ति नहीं रहने से, कोल्लकिर नाम के नगर में स्थिरवास किया था । एक बार उस प्रदेश में अकाल पड़ने से श्री संगम सूरिजीने सिंह नाम के अपने शिष्य को आचार्य पदवी दी, गच्छ के साथ अकालवाले प्रदेश में विहार करवाया और खुद अकेले ही उस नगर में ठहरे । आचार्य भगवंत ने नगर में नौ भाग कल्पे, यतनापूर्वक मासकल्प सँभालते थे । इस अनुसार विधिवत् द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावपूर्वक ममता रहित संयम का शुद्धता से पालन करते थे ।

एक बार श्री सिंहसूरिजीने आचार्य महाराज की खबर लेने के लिए दत्त नाम के शिष्य को भेजा । दत्तमुनि आए और जिस उपाश्रय में आचार्य महाराज को रखकर गए थे, उसी उपाश्रय में आचार्य महाराज को देखने से, मन में सोचने लगा कि, यह आचार्य भाव से भी मासकल्प नहीं सँभालते, शिथिल के साथ नहीं रहना चाहिए, ऐसा सोचकर आचार्य महाराज के साथ न ठहरा लेकिन बाहर की ओसरी में मुकाम किया । उसके बाद आचार्य महाराज को वंदना आदि करके सुख शाता के समाचार पूछे और कहा कि, आचार्य श्री सिंहसूरिजीने आपकी खबर लेने के लिए मुझे भेजा है । आचार्य महाराजने भी सुख शाता बताई और कहा कि, यहाँ किसी भी प्रकार की तकलीफ नहीं है आराधना अच्छी प्रकार से हो रही है । भिक्षा का समय होते ही आचार्य भगवंत दत्तमुनि को साथ लेकर गोचरी के लिए नीकले । अंतःप्रांत कुल में भिक्षा के लिए जाने से अनुकूल गोचरी प्राप्त नहीं होने से दत्तमुनि निराश हो गए। उनका भाव जानकर आचार्य भगवंत दत्त मुनि को किसी धनवान के घर भिक्षा के लिए ले गए । उस घर में शेठ के बच्चे को व्यंतरी ने झपट लिया था, बच्चा हंमेशा रोया करता था । इसलिए आचार्यने उस बच्चे के सामने देखकर ताली बजाते हुए कहा कि, 'हे वत्स ! रो मत ।' आचार्य के प्रभाव से वो व्यंतरी चली गई । इसलिए बच्चा चूप हो गया । यह देखते ही गृहनायक खुश हो गया और भिक्षा में लड्डू आदि वहोराया । दत्तमुनि खुश हो गए, इसलिए आचार्य ने उसे उपाश्रय भेज दिया और खुद अंतप्रांत भिक्षा वहोरकर उपाश्रय में आए ।

प्रतिक्रमण के समय आचार्य ने दत्तमुनि को कहा कि, 'धात्रीपिंड़ और चिकित्सापिंड़ की आलोचना करो ।' दत्तमुनि ने कहा कि, 'मैं तो तुम्हारे साथ भिक्षा के लिए आया था । धात्रीपिंड़ आदि का परिभोग किस प्रकार लगा।' आचार्यने कहा कि, 'छोटे बच्चे से खेला इसलिए क्रीड़न धात्रीपिंड़ दोष और चपटी बजाने से व्यंतरी को भगाया इसलिए चिकित्सापिंड़ दोष, इसलिए उन दोष की आलोचना कर लो । आचार्य का कहा सुनकर दत्तमुनि के मन में द्वेष आया और सोचने लगा कि, 'यह आचार्य कैसे हैं ?' खुद भाव से मासकल्प का भी आचरण नहीं करते और फिर हंमेशा ऐसा मनोज्ञ आहार लेते हैं । जब कि मैंने एक भी दिन ऐसा आहार लिया तो उसमें मुझे आलोचना करने के लिए कहते हैं ।' गुस्सा होकर आलोचना किए बिना उपाश्रय के बाहर चला गया ।

एक देव आचार्यश्री के गुण से उनके प्रति काफी बहुमानवाला हुआ था । उस देवने दत्त मुनि का इस प्रकार का आचरण और दुष्ट भाव जानकर उनके प्रति कोपायमान हुआ और शिक्षा करने के लिए वसति में गहरा अंधेरा विकुर्व्या फिर पवन की आँधी और बारिस शुरू हुई । दत्तमुनि भो भयभीत हो गए । कुछ दिखे नहीं । बारिस में भीगने लगा, पवन से शरीर काँपने लगा । इसलिए चिल्लाने लगा और आचार्य को कहने लगा कि, 'भगवन् ! मैं कहाँ जाऊं ? कुछ भी नहीं दिखता ।' क्षीरोदधि जल समान निर्मल हृदयवाले आचार्यने कहा कि, 'वत्स ! उपाश्रय के भीतर आ जाओ ।' दत्तमुनि ने कहा कि, 'भगवन् ! कुछ भी नहीं दिखता, कैसे भीतर आऊं ? अंधेरा होने से दरवाजा भी नहीं दिख रहा ।' अनुकंपा से आचार्यने अपनी ऊंगली थूँकवाली करके ऊपर किया, तो उसका दीए की ज्योत जैसा उजाला फैल गया । दुरात्मा दत्तमुनि सोचने लगा कि, अहो ! यह तो परिग्रह में अग्नि, दीप भी पास में रखते हैं ? आचार्य के प्रति दत्त ने ऐसा भाव किया, तब देव ने उसकी निर्भत्सना करके कहा कि, दुष्ट अधम ! ऐसे सर्वगुण रत्नाकर आचार्य भगवंत के प्रति ऐसा दुष्ट सोचते हो ? तुम्हारी प्रसन्नता के लिए कितना किया, फिर भी ऐसा दुष्ट चिन्तवन करते हो ? ऐसा कहकर गोचरी आदि की हकीकत बताई और कहा कि, यह जो उजाला है

वो दीप का नहीं है, लेकिन तुम पर अनुकंपा आ जाने से अपनी ऊंगली थूँकवाली करके, उसके प्रभाव से वो उजालेवाली हुई है । श्री दत्तमुनि को अपनी गलती का उपकार हुआ, पछतावा हुआ, तुरन्त आचार्य के पाँव में गिरकर माफी माँगी । आलोचना की । इस प्रकार साधु को धात्रीपिंड़ लेना न कल्पे ।

सूत्र – ४६३-४६९

दूतीपन दो प्रकार से होता है । जिस गाँव में ठहरे हो उसी गाँव में और दूसरे गाँव में । गृहस्थ का संदेशा साधु ले जाए या लाए और उसके द्वारा भिक्षा ले तो दूतीपिंड़ कहलाता है । संदेशा दो प्रकार से समझना – प्रकट प्रकार से बताए और गुप्त प्रकार से बताए । वो भी दो प्रकार से । लौकिक और लोकोत्तर । लौकिक प्रकट दूतीपन – दूसरे गृहस्थ को पता चल सके उस प्रकार से संदेशा कहे । लौकिक गुप्त दूतीपन – दूसरे गृहस्थ आदि को पता न चले उस प्रकार से निशानी से समझाए । लोकोत्तर प्रकट दूतीपन – संघाट्टक साधु को पता चले उस प्रकार से बताए । लोकोत्तर गुप्त दूतीपन – संघाट्टक साधु को पता न चले उस प्रकार से बताए ।

लोकोत्तर गुप्त दूतीपन कैसे होता है ? किसी स्त्री ने अपनी माँ को कहने के लिए संदेशा कहा । अब साधु सोचते हैं कि, 'प्रकट प्रकार से संदेशा कहूँगा तो संघाट्टक साधु को ऐसा लगेगा कि, यह साधु तो दूतीपन करते हैं । इसलिए इस प्रकार कहूँ कि, इस साधु को पता न चले कि 'यह दूतीपन करता है' ऐसा सोचकर वो साधु उस स्त्री की माँ के सामने जाकर कहे कि, तुम्हारी पुत्री जैनशासन की मर्यादा नहीं समझ रही । मुझे कहा कि मेरी माँ को इतना कहना । ऐसा कहकर जो कहा हो वो सब बता दे। यह सुनकर उस स्त्री की माँ समझ जाए और दूसरे संघाट्टक साधु के मन में दूसरे खयाल न आए इसलिए उस साधु को भी कहे मेरी पुत्री को मैं कह दूँगी कि इस प्रकार साधु को नहीं कहते । ऐसा कहने से संघाट्टक साधु को दूतीपन का पता न चले । सांकेतिक बोली में कहा जाए तो उसमें दूसरों को पता न चले । दूतीपन करने में कईं दोष रहे हैं ।

सूत्र – ४७०-४७३

जो किसी आहारादि के लिए गृहस्थ को वर्तमानकाल भूत, भावि के फायदे, नुकसान, सुख, दुःख, आयु, मौत आदि से जुड़े हुए निमित्त ज्ञान से कथन करे, वो साधु पापी है । क्योंकि निमित्त कहना पाप का उपदेश है । इसलिए किसी दिन अपना घात हो, दूसरों का घात हो या ऊभय का घात आदि अनर्थ होना मुमकीन है । इसलिए साधु को निमित्त आदि कहकर भिक्षा नहीं लेनी चाहिए ।

एक मुखी अपनी बीवी को घर में छोड़कर राजा की आज्ञा से बाहरगाँव गया था । उसके दौहरान किसी साधु ने निमित्त आदि कहने से मुखी की स्त्री को भक्त बनाया था । इसलिए वो अच्छा-अच्छा आहार बनाकर साधु को देती थी । बाहरगाँव गए हुए काफी दिन होने के बावजूद भी पति वापस नहीं आने से दुःखी होती थी । इसलिए साधु ने मुखी को स्त्री को कहा कि, तुम क्यों दुःखी होती हो ? तुम्हारे पति बाहर के गाँव से आ चूके हैं, आज ही तुमको मिलेंगे । स्त्री खुश हो गई । अपने रिश्तेदारों को उनको लेने के लिए भेजा । इस ओर मुखीने सोचा कि, छिपकर अपने घर जाऊं और अपनी बीवी का चारित्र देखूँ कि, सुशीला है या दुशीला है ? लेकिन रिश्तेदारों को देखकर मुखी को ताज्जुब हुआ । पूछा कि, मेरे आगमन का तुमको कैसे पता चला ? रिश्तेदारों ने कहा कि, तुम्हारी बीवी ने कहा इसलिए हम आए । हम दूसरा कुछ भी नहीं जानते । मुखी घर आया और अपनी बीवी को पूछा कि, मेरे आगमन का तुमको कैसे पता चला ? स्त्रीने कहा कि, यहाँ मुनि आए हैं और उन्होंने निमित्त के बल से मुझे बताया था । मुखी ने पूछा कि, उनके ज्ञान का दूसरा कोई पुरावा है ? स्त्रीने कहा कि, तुमने मेरे साथ जो चेष्टा की थी, जो बातें की थी और मैंने जो सपने देखे थे एवं मेरे गुप्तांग में रहा तिल आदि मुझे बताया, वो सब सच होने से तुम्हारा आगमन भी सच होगा, ऐसा मैंने तय किया था और इसलिए तुम्हें लेने के लिए सबको भेजा था ।

यह सुनते ही मुखी को जलन हुआ और गुस्सा हो गया । साधु के पास आकर गुस्से से कहा कि, बोलो ! इस घोड़ी के पेट में बछेरा है या बछेरी ? साधु ने कहा कि उसके पेट में पाँच लक्षणवाला बछेरा है । मुखीने सोचा , यदि यह सच होगा तो मेरी स्त्रीने कहा हुआ सब सच मानूँगा, वरना इस दुराचारी दोनों को मार डालूँगा । मुखीने

घोड़ी का पेट चिर ड़ाला और देखा तो मुनि के कहने के अनुसार पाँच लक्षणवाला घोड़ा था, यह देखते ही उसका गुस्सा शान्त हो गया । इस प्रकार निमित्त कहने में कईं दोष रहे हैं । इसलिए निमित्त कहकर पिंड़ लेना न कल्पे ।

सूत्र – ४७४-४८०

आजीविका पाँच प्रकार से होती है । जाति-सम्बन्धी, कुल सम्बन्धी, गण सम्बन्धी, कर्म सम्बन्धी, शील्प सम्बन्धी । इन पाँच प्रकारों में साधु इस प्रकार बोले कि जिससे गृहस्थ समझे कि, यह हमारी जाति का है, या तो साफ बताए कि मैं ब्राह्मण आदि हूँ । इस प्रकार खुद को ऐसा बताने के लिए भिक्षा लेना, वो आजीविका दोषवाली मानी जाती है । जाति-ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि या मातृपक्ष की माँ के रिश्तेदार जाति कहलाते हैं । कुल – उग्रकुल, राजन्यकुल, भोगकुल आदि या पितापक्ष का – पिता के रिश्तेदार सम्बन्धी कुल कहलाता है । गण – मल्ल आदि का समूह । कर्म – खेती आदि का कार्य या अप्रीति का उद्भव करनेवाला । शिल्प – तुणना, सीना, बेलना आदि या प्रीति को उद्भव करनेवाला । कोई ऐसा कहता है कि, गुरु के बिना उपदेश किया–शीखा हो वो कर्म और गुरु ने उपदेश करके – कहा-बताया-शीखाया वो शील्प ।

किसी साधु ने भिक्षा के लिए किसी ब्राह्मण के घर में प्रवेश किया, तब ब्राह्मण के पुत्र को होम आदि क्रिया अच्छी प्रकार से करते हुए देखकर अपनी जाति दिखाने के लिए ब्राह्मणने कहा कि, तुम्हारा बेटा होम आदि क्रिया अच्छी प्रकार से करता है । या फिर ऐसा कहे कि, गुरुकुल में अच्छी प्रकार से रहा हो ऐसा लगता है । यह सुनकर ब्राह्मणने कहा कि, तुम होम आदि क्रिया अच्छी प्रकार से जानते हो इसलिए यकीनन तुम ब्राह्मण जाति के लगते हो । यदि ब्राह्मण नहीं होते तो यह सब अच्छी प्रकार से कैसे पता चलता ? साधु चूप रहे । इस प्रकार साधुने कहकर अपनी जाति बताई वो बोलने की कला से दिखाई । या फिर साधु साफ कहते हैं, मैं ब्राह्मण हूँ । यदि वो ब्राह्मण भद्रिक होता तो यह हमारी जातिक है ऐसा समझकर अच्छा और ज्यादा आहार दे । यदि वो ब्राह्मण द्वेषी हो तो यह पापात्मा भ्रष्ट हुआ, उसने ब्राह्मणपन का त्याग किया है । ऐसा सोचकर अपने घर से नीकाल दे ।

इस प्रकार कुल, गण, कर्म, शील्प में दोष समझ लेना । इस प्रकार भिक्षा लेना वो आजीविकापिंड़ दोषवाली मानी जाती है । साधु को ऐसा पिंड़ लेना न कल्पे ।

सूत्र – ४८१-४९३

आहारादि के लिए साधु, श्रमण, ब्राह्मण, कृपण, अतिथि, श्वान आदि के भक्त के आगे – यानि जो जिसका भक्त हो उसके आगे उसकी प्रशंसा करके खुद आहारादि पाए तो उसे वनीपक पिंड़ कहते हैं । श्रमण के पाँच भेद हैं । निर्ग्रन्थ, बौद्ध, तापस, परिव्राजक और गौशाला के मत का अनुसरण करनेवाला । कृपण से दरिद्र, अंध, ठूंठे, लगड़े, बीमार, जुंगित आदि समझना । श्वान से कुत्ते, कौए, गाय, यक्ष की प्रतिमा आदि समझना । जो जिसके भक्त हो उनके आगे खुद उसकी प्रशंसा करे । कोई साधु भिक्षा के लिए गए हो वहाँ भिक्षा पाने के लिए निर्ग्रन्थ को आश्रित करके श्रावक के आगे बोले कि, हे उत्तम श्रावक ! तुम्हारे यह गुरु तो काफी ज्ञानवाले हैं, शुद्ध क्रिया और अनुष्ठान पालन करने मे तत्पर हैं, मोक्ष के अभिलाषी हैं ।

बौद्ध के भक्त के आगे वहाँ बौद्ध भिक्षुक भोजन करते हो तो उनकी प्रशंसा करे इस प्रकार तापस, परिव्राजक और गोशाल के मत के अनुयायी के आगे उनकी प्रशंसा करे । ब्राह्मण के भक्त के सामने कहे कि, ब्राह्मण को दान देने से ऐसे फायदे होते हैं । कृपण के भक्त के सामने कहे कि, बेचारे इन लोगों को कौन देगा । इन्हें देने से तो जगत में दान की जयपताका मिलती है । आदि । श्वान आदि के भक्त के सामने कहे कि, बैल आदि को तो घास आदि मिल जाता है, जब कि कुत्त आदि को तो लोग हट् हट् करके या लकड़ी आदि मारकर नीकाल देते हैं। इसलिए बेचारे को सुख से खाना भी नहीं मिलता । काक, तोता आदि शुभाशुभ बताते हैं । यक्ष की मूरत के भक्त के सामने यक्ष के प्रभाव आदि का बयान करे ।

इस प्रकार आहार पाना काफी दोष के कारण हैं । क्योंकि साधु इस प्रकार दान की प्रशंसा करे तो अपात्र में दान की प्रवृत्ति होती है और फिर दूसरों को ऐसा लगे कि यह साधु बौद्ध आदि की प्रशंसा करते हैं इसलिए जरुर

यह धर्म उत्तम है । इससे जीव मिथ्यात्व में स्थिर हो, या श्रद्धावाला हो तो मिथ्यात्व पाए । आदि कईं दोष हैं । और फिर यदि वो बौद्ध आदि का भक्त हो तो साधुको आधाकर्मादि अच्छा आहार बनाकर दे । इस प्रकार साधु रोज वहाँ जाने से बौद्ध की प्रशंसा करने से वो साधु भी शायद बौद्ध हो जाए । झूठी प्रशंसा आदि करने से मृषावाद भी लगे ।

यदि वो ब्राह्मण आदि साधु के द्वेषी हो बोले कि, इसको पीछले भव में कुछ नहीं दिया इसलिए इस भव में नहीं मिलता, इसलिए ऐसा मीठा बोलता है, कुत्ते की प्रकार दीनता दिखाता है, आदि बोले । इससे प्रवचन विराधना होती है, घर से निकाल दे या फिर से घर में न आए इसलिए झहर आदि दे । इससे साधु की मौत आदि हो । इसलिए आत्मविराधना आदि दोष रहे हैं ।

सूत्र – ४९४-४९८

किसी के घर साधु भिक्षा के लिए गए, वहाँ गृहस्थ बीमारी के इलाज के लिए दवाई के लिए पूछे, तो साधु ऐसा कहे कि, क्यों मैं वैद्य हूँ ? इसलिए वो गृहस्थ समझे कि, यह बीमारी के इलाज के लिए वैद्य के पास जाने के लिए कहत हैं । या फिर कहे कि, मुझे ऐसी बीमारी हुई थी और तब ऐसा इलाज किया था और अच्छा हो गया था । या फिर साधु खुद ही बीमारी का इलाज करे । इन तीन प्रकार से चिकित्सा दोष लगता है ।

इस प्रकार आहारादि के लिए चिकित्सा करने से कईं प्रकार के दोष लगते हैं । जैसे कि – औषध में कंदमूल आदि हो, उसमें जीव विराधना हो । ऊबाल क्वाथ आदि करने से असंयम हो । गृहस्थ अच्छा होने के बाद तपे हुए लोहे की प्रकार जो किसी पाप व्यापार जीव वध करे उसका साधु निमित्त बने, अच्छा हो जाने पर साधु को अच्छा-अच्छा आहार बनाकर दे उसमें आधाकर्मादि कईं दोष लगे । और फिर उस मरीज को बीमारी बढ़ जाए या मर जाए तो उसके रिश्तेदार आदि साधु को पकड़कर राजसभा में ले जाए, वहाँ कहे कि, इस वेशधारी ने इसे मार ड़ाला । न्याय करनेवाले साधु को अपराधी ठहराकर मृत्युदंड़ दे, उसमें आत्म विराधना । लोग बोलने लगे कि, इस साधुने अच्छा आहार मिले इसलिए यह इलाज किया है । इससे प्रवचन विराधना । इस प्रकार इलाज करने से जीव विराधना यानि संयम विराधना, आत्म विराधना और प्रवचन विराधना ऐसे तीन प्रकार की विराधना होती है ।

सूत्र – ४९९-५०२

विद्या-ओम्कारादि अक्षर समूह–एवं मंत्र योगादि का प्रभाव, तप, चार-पाँच उपवास, मासक्षमण आदि का प्रभाव, राजा-राजा, प्रधान आदि अधिकारी का माननीय राजादि वल्लभ, बल-सहस्र योद्धादि जितना साधु का पराक्रम देखकर या दूसरों से मालूमात करके, गृहस्थ सोचे कि, यदि यह साधु को नहीं देंगे तो शाप देंगे, तो घर में किसी को मौत होगी । या विद्या-मंत्र का प्रयोग करेंगे, राजा का वल्लभ होने से हमे नगर के बाहर नीकलवा देंगे, पराक्रमी होने से मारपीट करेंगे । आदि अनर्थ के भय से साधु को आहारादि दे तो उसे क्रोधपिंड़ कहते हैं । क्रोध से जो आहार ग्रहण किया जाए उसे क्रोधपिंड़ दोष लगता है ।

सूत्र – ५०३-५११

अपना लब्धिपन या दूसरों से अपनी प्रशंसा सुनकर गर्वित बना हुआ, तूँ ही यह काम करने के लिए समर्थ है, ऐसा दूसरे साधु के कहने से उत्साही बने या 'तुमसे कोई काम सिद्ध नहीं होता ।' ऐसा दूसरों के कहने से अपमानीत साधु, अहंकार के वश होकर पिंड़ की गवेषणा करे यानि गृहस्थ को कहे कि, 'दूसरों से प्रार्थना किया गया जो पुरुष सामनेवाले के ईच्छित को पूर्ण करने के लिए खुद समर्थ होने के बावजूद भी नहीं देता, वो नालायक पुरुष है । आदि वचन द्वारा गृहस्थ को उत्तेजित करके उनके पास से अशन आदि पाए तो उसे मानपिंड़ कहते हैं।

गिरिपुष्पित नाम के नगर में विजयसिंहसूरिजी परिवार के साथ पधारे थे । एक दिन कुछ तरूण साधु इकट्ठे हुए और आपस में बातें करने लगे । वहाँ एक साधु ने कहा कि, 'बोलो हममें से कौन सुबह में पकाई हुई सेव लाकर दे ? वहाँ गुणचंद्र नाम के एक छोटे साधु ने कहा कि, 'मैं लाकर दूँगा ।' तब दूसरे साधु ने कहा कि, यदि घी गुड़ के साथ हम सबको सेव पूरी न मिले तो क्या काम ? थोड़ी-सी लेकर आए उसमें क्या ? इसलिए सबको मिल

सके इतनी लाए तो माने । यह सुनकर अभिमानी गुणचन्द्र मुनिने कहा कि, 'अच्छा, तुम्हारी मरजी होगी उतनी लाकर दूँगा ।' ऐसी प्रतिज्ञा करके बड़ा नंदीपात्र लेकर सेव लेने के लिए नीकला । घूमते-घूमते एक परिवार के घर में काफी सेव, घी, गुड़ आदि तैयार देखने को मिला । इसलिए साधु ने वहाँ जाकर कईं प्रकार के वचन बोलकर सेव माँगी, लेकिन परिवार की स्त्री सुलोचनाने सेव देने से साफ इन्कार कर दिया और कहा कि, तुम्हें तो थोड़ा सा भी नहीं दूँगी । इसलिए साधु ने मानदशा में आकर कहा कि, मैं तुम्हारे घर से ही यकीनन घी गुड़ के साथ सेव लूँगा । सुलोचना भी गर्व से बोली कि, यदि तुम इस सेव में से जरा सी भी सेव पा लोगे तो मेरे नाक पर पिशाब किया ऐसा समझना । क्षुल्लक साधु ने सोचा कि, यकीनन ऐसा ही करूँगा । फिर घर से बाहर नीकलकर किसी को पूछा कि, यह किसका घर है ? उसने कहा कि, यह विष्णुमित्र का घर है । विष्णुमित्र कहाँ है ? अभी चौराहे पर होंगे । गुणचन्द्र मुनि चोरा पर पहुँचे और वहाँ जाकर पूछा कि, तुममें से विष्णुमित्र कौन है ? तुम्हें उनका क्या काम है ? मुझे उनसे कुछ माँगना है । वो विष्णुमित्र, इन सबका बहनोई जैसा था, इसलिए मझाक में कहा कि वो तो कृपण है, वो तुम्हें कुछ नहीं दे सकेगा, इसलिए हमारे पास जो माँगना हो वो माँगो । विष्णुमित्र को लगा कि, यह तो मेरा नीचा दिखेगा, इसलिए उन सबके सामने साधु को कहा कि, मैं विष्णुमित्र हूँ, तुम्हें जो माँगना हो वो माँगो, यह सभी मझाक में बोलते हैं वो तुम मत समझना ।

तब साधु ने कहा कि, यदि तुम स्त्री प्रधान छह पुरुष में से एक भी न हो तो मैं माँगू । यह सुनकर चौटे पर बैठे दूसरे लोगों ने पूछा कि, वो स्त्रीप्रधान छह पुरुष कौन ? जिसमें से एक के लिए तुम ऐसा शक कर रहे हो ? गुणचन्द्र मुनि ने कहा कि, सुनो ! उनके नाम – १. श्वेतांगुली, २. बकोड्डायक, ३. किंकर, ४. स्नातक, ५. गीधड़ की प्रकार उछलनीवाला और ६. बच्चे का मलमूत्र साफ करनेवाला ।

इस प्रकार उस साधु ने कहा कि, तुरन्त चौटे पर बैठे सभी लोग एक साथ हँसकर बोल पड़े कि, यह तो छह पुरुषों के गुण को धारण करनेवाला है, इसलिए स्त्रीप्रधान ऐसे इनके पास कुछ मत माँगना । यह सुनकर विष्णुमित्र बोला कि, मैं उन छह पुरुष जैसा नपुंसक नहीं हूँ । इसलिए तुम्हें जो चाहिए माँगो, मैं जरुर दूँगा । साधुने कहा कि, यदि ऐसा है तो घी, गुड़ के साथ पात्र भरकर मुझे सेव दो । चलो, पात्र भरकर सेव दूँ । ऐसा कहकर विष्णुमित्र साधु को लेकर अपने घर की ओर चलने लगा । रास्ते में साधुने सारी बात बताई कि, तुम्हारे घर गया था लेकिन तुम्हारी बीवीने देखे का इन्कार कया है, यदि वो मौजूद होंगी तो नहीं देंगी । विष्णुमित्र ने कहा कि, यदि ऐसा है तो तुम यहाँ खड़े रहो । थोड़ी देर के बाद तुम्हें बुलाकर सेव दूँ । विष्णुमित्र घर गया और अपनी बीवी को पूछा कि, सेव पक गई है ? घी, गुड़ सब चीजें तैयार हैं ? स्त्री ने कहा कि, हाँ, सबकुछ तैयार है । विष्णुमित्रने सब देखा और गुड़ देखते ही बोला कि, इतना गुड़ नहीं होगा, ऊपर से दूसरा गुड़ लाओ । स्त्री सीड़ी रखकर गुड़ लेने के लिए ऊपर चड़ी, इसलिए विष्णुमित्र ने सीड़ी ले ली । फिर साधु को बुलाकर घी, गुड़, सेव देने लगा । जब सुलोचना स्त्री गुड़ लेकर नीचे उतरने जाती है तो सीड़ी नहीं थी । इसलिए नीचे देखने लगी तो विष्णुमित्र उस साधु को सेव आदि दे रहा था । यह देखते ही वो बोल पड़ी, 'अरे ! इन्हें सेव मत देना ।' साधुने भी उनके सामने देखकर अपनी ऊंगली नाक पर रखकर कहा कि, मैंने तुम्हारी नाक पर पिशाब किया। ऐसा कहकर घी, गुड़, सेव भरा पात्र लेकर उपाश्रय में गया ।

इस प्रकार भिक्षा लेना मानपिंड़ कहलाता है । ऐसी भिक्षा साधु को न कल्पे । क्योंकि वो स्त्री-पुरुष को साधु के प्रति द्वेष जगे इसलिए फिर से भिक्षा आदि न दे । शायद दोनों में से किसी एक को द्वेष हो । क्रोधित होकर शायद साधु को मारे या मार डाले तो आत्मविराधना होती है, लोगों के सामने जैसे-तैसे बोले उसमें प्रवचन विराधना होती है । इसलिए साधु ने ऐसी मानपिंड़ दोषवाली भिक्षा नहीं लेनी चाहिए ।

सूत्र – ५१२-५१८

आहार पाने के लिए दूसरों को पता न चले उस प्रकार से मंत्र, योग, अभिनय आदि से अपने रूप में बदलाव लाकर आहार पाना । इस प्रकार से पाया हुआ आहार मायापिंड़ नाम के दोष से दूषित माना जाता है ।

राजगृही नगरी में सिंहस्थ नाम का राजा राज्य करता था । उस नगर में विश्वकर्मा नाम का जानामाना नट रहता था। उसको सभी कला में कुशल अति स्वरूपवान मनोहर ऐसी दो कन्या थी । धर्मरुची नाम के आचार्य विहार करते-करते उस नगर में आ पहुँचे । उन्हें कईं शिष्य थे, उसमें आषाढ़ाभूति नाम के शिष्य तीक्ष्ण बुद्धिवाले थे । एक बार आषाढ़ाभूमि भिक्षा के लिए घूमते-घूमते विश्वकर्मा नट के घर गए । विश्वकर्मा की बेटी ने सुन्दर मोदक दिया, उसे लेकर मुनि बाहर नीकले । कईं वसाणे से भरे, खुशबूदार मोदक देखकर, आषाढ़ाभूति मुनिने सोचा कि, यह उत्तम मोदक तो आचार्य महाराज की भक्ति में जाएगा । ऐसा मोदक फिर कहाँ मिलेगा ? – इसलिए रूप बदलकर दूसरा लड्डू ले आऊं । ऐसा सोचकर खुद एक आँख से काने हो गए और फिर 'धर्मलाभ' देकर उस नट के घर में गए । दूसरा लड्डू मिला । सोचा कि, यह मोदक तो उपाध्याय को देना पड़ेगा । इसलिए फिर कुबड़े का रूप धारण करके तीसरा लड्डू पाया । यह तो संघाट्टक साधु को देना पड़ेगा । इसलिए कोढ़ीआ का रूप धारण करके चौथा लड्डू ले आया । अपने घर के झरोखे में बैठे विश्वकर्मा ने साधु को अलग-अलग रूप बदलते देख लिया । इसलिए उसने सोचा कि, यदि यह नट बने तो उत्तम कलाकार बन सकता है । इसलिए किसी भी प्रकार से इसको वश में करना चाहिए । सोचने से उपाय मिल गया । मेरी दोनों लड़कियाँ जवान, खूबसूरत, चालाक और बुद्धिशाली हैं । उनके आकर्षण से साधु को वश कर सकेंगे ।

विश्वकर्मा नीचे ऊतरा और तुरन्त साधु को वापस बुलाया और लड्डू भरा पात्र दिया और कहा कि, भगवन्! हंमेशा यहाँ पधारकर हमें लाभ देना । आषाढ़ाभूति भिक्षा लेकर उपाश्रय में पहुँचे ।

इस ओर विश्वकर्मा ने अपने परिवार को साधु के रूप परिवर्तन की सारी बाते बताईं । फिर दोनों लड़कियों को एकान्त में बुलाकर कहा कि, कल भी यह मुनि भिक्षा के लिए जरुर आएंगे । आने पर तुम सम्मान से अच्छी प्रकार से भिक्षा देना और उनको वश में करना । वो आसक्त हो जाए फिर कहना कि, हमें तुमसे काफी स्नेह है, इसलिए तुम हमें अपनाकर हमसे शादी करो । आषाढ़ाभूति मुनि तो मोदक आदि के आहार में लट्टु हो गए और रोज विश्वकर्मा नट के घर भिक्षा के लिए जाने लगे । नटकन्या सम्मान के साथ स्नेह से अच्छी भिक्षा देती है । आषाढ़ाभूति धीरे-धीरे नटकन्या के प्रति आकर्षित होने लगे और स्नेह बढ़ने लगा । एक दिन नटकन्या ने माँग की। चारित्रावरण कर्म का जोरों का उदय हुआ । गुरु का उपदेश भूल गए, विवेक नष्ट हुआ, कुलजाति का अभिमान पीगल गया । इसलिए आषाढ़ाभूति ने शादी की बात का स्वीकार किया और कहा कि यह मेरा मुनिवेश मेरे गुरु को सौंपकर वापस आता हूँ ।

गुरु महाराज के पाँव में गिरकर आषाढ़ाभूति ने अपना अभिप्राय बताया । गुरु महाराज ने कहा कि, वत्स ! तुम जैसे विवेकी और ज्ञानी को आलोक और परलोक में जुगुप्सनीय आचरण करना योग्य नहीं है । तुम सोचो, लम्बे अरसे तक उत्तम प्रकार के शील का पालन किया है, तो फिर अब विषय में आसक्त मत हो, दो हाथ से पूरा सागर तैरने के बाद खबोचिये में कौन डूबे ? आदि कईं प्रकार से आषाढ़ाभूति को समझाने के बाद भी आषाढ़ाभूति को कुछ असर नहीं हुआ । आषाढ़ाभूति ने कहा कि, भगवन् ! आप कहते हो वो सब बराबर है, लेकिन प्रतिकूल कर्म का उदय होने से विषय के विराग समान मेरा कवच कमझोरी के योग से स्त्री की मजाक समान तीर से जर्जरीत हो गया है । ऐसा कहकर आचार्य भगवंत को नमस्कार करके अपना ओघो गुरु महाराज के पास रख दिया । फिर सोचा कि, एकान्त उपकारमंद संसार सागर में डूबते जीव का उद्धार करने की भावनावाले, सभी जीव के बँधु तुल्य ऐसे गुरु को पीठ क्यों दिखाए ? ऐसा सोचकर उल्टे कदम से उपाश्रय के बाहर नीकलकर सोचते हैं । ऐसे गुरु की चरणसेवा फिर से कब प्राप्त होगी ? आषाढ़ाभूति विश्वकर्मा के मंदिर में आ पहुँचे । विश्वकर्मा ने आदर के साथ कहा कि, महाभाग्यवान ! यह मेरी दोनों कन्याओं को अपनाओ । दोनों कन्या की शादी आषाढ़ाभूति के साथ की गई । (वृत्ति में दी गई बाद की कथा विषयवस्तु को समझाने में जरुरी नहीं है लेकिन सार इतना कि मायापिंड़ उस साधु को चारित्र छुड़वानेवाला बना है इसलिए इस प्रकार साधु को उत्सर्ग मार्ग से मायापिंड़ ग्रहण नहीं करना चाहिए । अपवाद मार्ग से, बीमारी, तपस्या, मासक्षमण, प्राघुर्णक, वृद्ध एवं संघ आदि

की विशेष कारण से मायापिंड़ ले सकते हैं ।

सूत्र – ५१९-५२१

रस की आसक्ति से सिंह केसरिया लड्डू, घेबर आदि आज मैं ग्रहण करूँगा । ऐसा सोचकर गोचरी के लिए जाए, दूसरा कुछ मिलता हो तो ग्रहण न करे लेकिन अपनी ईच्छित चीज पाने के लिए घूमे और ईच्छित चीज चाहिए उतनी पाए उसे लोभपिंड़ कहते हैं । साधु को ऐसी लोभपिंड़ दोषवाली भिक्षा लेना न कल्पे । चंपा नाम की नगरी में सुव्रत नाम के साधु आए हुए थे । एक बार वहाँ लड्डू का उत्सव था इसलिए लोगों ने प्रकार-प्रकार के लड्डू बनाए थे और खाते थे । सुव्रत मुनि ने गोचरी के लिए नीकलते ही मन में तय किया कि, आज तो सिंहकेसरिया लड्डू भिक्षा में लेने हैं । चंपानगरी में एक घर से दूसरे घर घूमते हैं, लेकिन सिंहकेसरिया लड्डू नहीं मिलते । घूमते-घूमते दो प्रहर बीत गए लेकिन लड्डू नहीं मिला, इसलिए नजर लड्डू में होने से मन भटक गया । फिर तो घर में प्रवेश करते हुए 'धर्मलाभ' की बजाय 'सिंहकेसरी' बोलने लगे । ऐसे ही पूरा दिन बीत गया लेकिन लड्डू न मिले । रात होने पर भी घूमना चालु रहा । रात के दो प्रहर बीते होंगे वहीं एक गीतार्थ और बुद्धिशाली श्रावक के घर में 'सिंहकेसरी' बोलते हुए प्रवेश किया । श्रावक ने सोचा, दिन में घूमने से सिंहकेसरी लड्डू नहीं मिला इसलिए मन भटक गया है । यदि सिंहकेसरी लड्डू मिले तो चित्त स्वस्थ हो जाए । ऐसा सोचकर श्रावक ने 'पधारो भगवंत' सिंहकेसरिया लड्डू का पूरा डिब्बा लेकर उनके पास आकर कहा कि, लो महाराज सिंहकेसरिया लड्डू । ग्रहण करके मुझे लाभ दो । मुनि ने लड्डू ग्रहण किए । पात्रा में सिंहकेसरिया लड्डू आने से उनका चित्त स्वस्थ हो गया ।

श्रावक ने मुनि को पूछा कि, 'भगवन् ! आज मैंने पुरीमड्ढ का पच्चक्खाण किया है, तो वो पूरा हुआ कि नहीं ?' सुव्रत मुनि ने समय देखने के लिए आकाश की ओर देखा, तो आकाश में कईं तारों के मंड़ल देखे और अर्ध रात्रि होने का पता चला । अर्धरात्री मालूम होते ही मुनि सोच में पड़ गए । अपना चित्तभ्रम जाना । हा ! मूर्ख ! आज मैंने क्या किया ? अनुचित आचरण हो गया । धिक्कार है मेरे जीवन को, लालच में अंध होकर दिन और रात तक घूमता रहा । यह श्रावक उपकारी है कि सिंहकेसरी लड्डू वहोराकर मेरी आँखें खोल दी । मुनि ने श्रावक को कहा कि, महाश्रावक ! तुमने अच्छा किया सिंहकेसरी लड्डू देकर पुरिमड्ढ पच्चक्खाण का समय पूछकर संसार में डूबने से बचाया । रात को ग्रहण करने से अपनी आत्मा की नींदा करते हुए और लड्डू परठवते हुए शुक्ल ध्यान में बैठे, क्षपकश्रेणी से लेकर लड्डू के चूरे करते हुए आत्मा पर लगे घाती कर्म को भी चूरा कर दिया । केवलज्ञान हुआ। इस प्रकार लोभ से भिक्षा लेना न कल्पे ।

सूत्र – ५२२-५३१

संस्तव यानि प्रशंसा । वो दो प्रकार से है । १. सम्बन्धी संस्तव, २. वचन संस्तव । सम्बन्धी संस्तव परिचय समान है और प्रशंसा वचन बोलना वचन संस्तव है । सम्बन्धी संस्तव में पूर्व संस्तव और पश्चात् संस्तव । वचन संस्तव में भी पूर्व संस्तव और पश्चात् संस्तव ये दो भेद होते हैं ।

सम्बन्धी पूर्व संस्तव – माता-पितादि के रिश्ते से पहचान बनाना । साधु भिक्षा के लिए घूमते हुए किसी के घर में प्रवेश करे, वहाँ आहार की लंपटता से अपनी और सामनेवाले की उम्र जानकर उम्र के रिश्ते से बोले । यदि वो स्त्री वृद्धा और खुद मध्यम आयु का हो तो कहे कि, मेरी माँ तुम जैसी थी । वो स्त्री मध्यम उम्र की हो तो कहे कि, मेरी बहन तुम जैसी थी ! छोटी उम्र हो तो कहे कि, मेरी पुत्री या पुत्र की पुत्री तुम जैसी थी । इत्यादि बोलकर आहार पाए । इस से सम्बन्धी पूर्वसंस्तव दोष लगे । सम्बन्धी पश्चात् संस्तव – पीछे से रिश्ता हुआ हो तो सास-ससुर आदि के रिश्ते से पहचान बनाना । मेरी सांस, पत्नी तुम जैसे थे आदि बोले वो सम्बन्धी पश्चात् संस्तव हैं ।

वचन पूर्व संस्तव – दातार के गुण आदि जो पता चला हो, उसकी प्रशंसा करे । भिक्षा लेने से पहले सच्चे या झूठे गुण की प्रशंसा आदि करना । जैसे कि, 'अहो ! तुम दानेश्वरी हो उसकी केवल बात ही सुनी थी लेकिन आज तुम्हें प्रत्यक्ष देखा है । तुम जैसे बड़े आदि गुण दूसरों के नहीं सुने । तुम भाग्यशाली हो कि तुम्हारे गुण की प्रशंसा चारों दिशा में पृथ्वी के अन्त तक फैली है । आदि बोले । वो वचन पूर्व संस्तव कहलाता है । वचन – पश्चात्

संस्तव – भिक्षा लेने के बाद दातार की प्रशंसा करना । भिक्षा लेने के बाद बोले कि, आज तुम्हें देखने से मेरे नैन निर्मल हुए । गुणवान को देखने से चक्षु निर्मल बने उसमें क्या ताज्जुब । तुम्हारे गुण सच्चे ही हैं, तुम्हें देखने से पहले तुम्हारे दान आदि गुण सुने थे, तब मन में शक हुआ था कि, यह बात सच होगी या झूठ ? लेकिन आज तुम्हें देखने से वो शक दूर हो गया है । आदि प्रशंसा करे उसे वचन पश्चात् संस्तव कहते हैं ।

ऐसे संस्तव दोषवाली भिक्षा लेने से दूसरे कईं प्रकार के दोष होते हैं ।

सूत्र – ५३२-५३७

जप, होम, बलि या अक्षतादि की पूजा करने से साध्य होनेवाली या जिसके अधिष्ठाता प्रज्ञाप्ति आदि स्त्री देवता हो वो विद्या । एवं जप होम आदि के बिना साध्य होता हो या जिसका अधिष्ठाता पुरुष देवता हो वो मंत्र ।

भिक्षा पाने के लिए विद्या या मंत्र का उपयोग किया जाए तो वो पिंड़ विद्यापिंड़ या मंत्रपिंड़ कहलाता है । ऐसा पिंड़ साधु को लेना न कल्पे ।

गंधसमृद्ध नाम के नगर में बौद्ध साधु का भक्त धनदेव रहता था । वो बौद्ध साधु की भक्ति करता था । उसके वहाँ यदि जैन साधु आए हो तो कुछ भी न देता । एक दिन तरूण साधु आपस में इकट्ठे होकर बातें कर रहे थे, वहाँ एक साधु बोले कि, इस धनदेव संयत साधु को कुछ भी नहीं देता । हममें से कोई ऐसा है कि जो धनदेव के पास घी, गुड़ आदि भिक्षा दिला सके ? एक साधु बोल पड़ा कि, मुझे आज्ञा दो, मैं धनराज से दान दिलवाऊं । साधु ने कहा कि अच्छा, तुम्हें आज्ञा दी । वो साधु धनदेव के घर के पास गया और उसके घर पर विद्या का प्रयोग किया। इसलिए धनदेव ने कहा कि, क्या दूँ ? साधु ने कहा कि, घी, गुड़, वस्त्र आदि दो । धनदेव ने काफी घी, गुड़, कपड़े आदि दिए । साधु भिक्षादि लेकर गए फिर उस साधुने विद्या संहर ली । इसलिए धनदेव को पता चला । घी, गुड़ आदि देखकर उसे लगा कि, कोई मेरे घी, गुड़ आदि की चोरी करके चला गया है । और खुद विलाप करने लगा । लोगों ने पूछा कि, क्यों रो रहे हो ? क्या हुआ ? धनदेव ने कहा कि, मेरा घी आदि किसी ने चोरी कर लिया है ।

लोगों ने कहा कि, तुम्हारे हाथ से ही साधु को चाहे उतना दिया है और अब चोरी के लिए क्यों चिल्लाते हो? यह सुनकर धनदेव चूप हो गया । विद्या संहरकर वो स्वभावस्थ हुआ । अब यदि उस साधु का द्वेषी हो तो दूसरी विद्या के द्वारा साधु को स्थंभित कर दे या मार ड़ाले, या फिर लोगों को कहे कि, विद्यादि से दूसरों का द्रोह करके जिन्दा है, इसलिए मायावी है, धूर्त है आदि मन चाहा बोले । इसलिए साधु की नींदा हो, राजकुल में ले जाए तो वध, बंधन आदि कदर्थना हो । इसलिए साधु को विद्या का प्रयोग भिक्षा में लेना न कल्पे ।

सूत्र – ५३८-५५४

चूर्णपिंड़ – अदृश्य होना या वशीकरण करना, आँख में लगाने का अंजन या माथे पर तिलक करने आदि की सामग्री चूर्ण कहलाती है । भिक्षा पाने के लिए इस प्रकार के चूर्ण का उपयोग करना, चूर्णपिंड़ कहलाता है ।

योगपिंड़ – सौभाग्य और दौर्भाग्य को करनेवाले पानी के साथ घिसकर पीया जाए ऐसे चंदन आदि, धूप देनेवाले, द्रव्य विशेष, एवं आकाशगमन, जलस्थंभन आदि करे ऐसे पाँव में लगाने का लेप आदि औषधि योग कहलाती है । भिक्षा पाने के लिए इस प्रकार के योग का उपयोग, योगपिंड़ कहलाता है ।

चूर्णपिंड़ पर चाणक्य ने पहचाने हुए दो अदृश्य साधु का दृष्टांत – पादलेपन समान योगपिंड़ पर श्री समितसूरि का दृष्टांत, मूलकर्मपिंड़ पर अक्षतयोनि एवं क्षतयोनि करने पर दो स्त्री का दृष्टांत, विवाह विषयक मूल कर्मपिंड़ पर दो स्त्री का दृष्टांत और गर्भाधान एवं गर्भपीड़न रूप मूलकर्म पिंड़ पर राज की दो रानी का दृष्टांत । ऊपर के अनुसार विद्या, मंत्र, चूर्ण, योग के उत्सर्ग, अपवाद को बतानेवाले आगम का अनुसरण करनेवाले साधु यदि गण, संघ या शासन आदि के कार्य के लिए उपयोग करे तो यह विद्यामंत्रादि दुष्ट नहीं है । ऐसे कार्य के लिए उपयोग कर सके । उसमें शासन प्रभावना रही है । केवल भिक्षा पाने के लिए उपयोग करे तो ऐसा पिंड़ साधु के लिए अकल्प्य है ।

मूलकर्मपिंड़ – मंगल को करनेवाली लोक में जानीमानी औषधि आदि से स्त्री को सौभाग्यादि के लिए स्नान करवाना, धूप आदि करना, एवं गर्भाधान, गर्भस्थंभन, गर्भपात करवाना, रक्षाबंधन करना, विवाह-लग्न आदि करवाना या तुड़वाना आदि, क्षतयोनि करवाना यानि उस प्रकार का औषध कुमारिका आदि को दे कि जिससे योनि में से रूधिर बहता जाए । अक्षतयोनि यानि औषध आदि के प्रयोग से बहता रूधिर बंध हो । यह सब आहारादि के लिए करे तो मूलकर्मपिंड़ कहलाता है ।

ब्रह्मदीप में देवशर्मा नाम का कुलपति ४९९ तापस के साथ रहता है । अपनी महिमा बताने के लिए संगति आदि पर्व के दिन देवशर्मा अपने परिवार के साथ पाँव में लेप लगाकर कृष्णा नदी में उतरकर अचलपुर गाँव में आता था । लोगों को ऐसा अतिशय देखकर ताज्जुब हुआ, इसलिए भोजन आदि अच्छी प्रकार से देकर तापस की अच्छा सत्कार करते थे । इसलिए लोग तापस की प्रशंसा करते थे और जैन की नींदा करते थे, एवं श्रावकों को कहने लगे कि, तुम्हारे गुरु में ऐसी शक्ति है क्या ? श्रावक ने आचार्य श्री समितसूरिजी से बात की । आचार्य महाराज समझ गए कि, वो पाँव के तलवे में लेप लगाकर नदी पार करते हैं लेकिन तप के बल पर नहीं उतरता । आचार्य महाराज ने श्रावकों को कहा कि, उनका कपट खुला करने के लिए तुम्हें उसको उसके सभी तापस के साथ तुम्हारे यहाँ खाने के लिए बुलाना और खाने से पहले उसके पाँव इस प्रकार धोना कि लेप का जरा सा भी हिस्सा न रहे । फिर क्या किया जाए वो मैं सँभाल लूँगा ।

श्रावक तापस के पास गए । पहले तो उनकी काफी प्रशंसा की, फिर परिवार के साथ भोजन करने का न्यौता दिया । तापस भोजन के लिए आए, इसलिए श्रावक तापस के पाँव धोने लगे । कुलपति – मुखिया तापस ने मना किया । क्योंकि पाँव साफ करने से लेप नीकल जाए । श्रावक ने कहा कि पाँव धोए बिना भोजन करवाए तो अविनय होता है, इसलिए पाँव धोने के बाद ही भोजन करवाया जाता है । फिर श्रावकों ने तापसों के पाँव अच्छी प्रकार धोकर अच्छी प्रकार से खिलाया । फिर उन्हें छोड़ने के लिए सभी श्रावक उनके साथ नदी के किनारे पर गए। कुलपति अपने तापस के साथ नदी में उतरने लगा । लेकिन लेप न होने से पानी में डूबने लगा । यह देखते ही लोगों को उनकी अपभ्राजना हुई कि अहो ! यह तो लोगों को धोखा देने के लिए लेप लगाकर नदी में जाते थे । इस समय तापस आदि के प्रतिबोध के लिए सूरिजी वहाँ आए और लोग सुने उस प्रकार बोले कि, हे कृष्णा ! हमें सामने के तट पर जाना है । वहाँ तो नदी के दोनों तट इकट्ठे हो गए । यह देखकर लोग एवं तापस सहित कुलपति आदि सबको ताज्जुब हुआ । आचार्यश्री का ऐसा प्रभाव देखकर देवशर्मा तापस ने अपने ४९९ तापस के साथ आचार्य भगवंत के पास दीक्षा ली । उनकी ब्रह्म नाम की शाखा बनी ।

अज्ञानी लोग शासन की नींदा करते थे उसे टालने के लिए और शासन की प्रभावना करने के लिए सूरिजी ने किया यह उपयोग सही था, लेकिन केवल भिक्षा के लिए लेप आदि करना साधु को न कल्पे । उसमें भी संयम विराधना, आत्म विराधना, प्रवचन विराधना होती है ।

साधु ने भिक्षादि निमित्त से चूर्ण, योग, मूलकर्म आदि पिंड़ ग्रहण नहीं करना चाहिए, क्योंकि इस प्रकार करने में कईं प्रकार के दोष रहे हैं । प्रयोग करने का पता चले तो साधु के प्रति द्वेष करे, ताड़न-मारण करे । औषध आदि के लिए वनस्पतिकाय, पृथ्वीकाय आदि की विराधना हो । भिन्नयोनि करने से जिन्दगी तक उसे भोग का अंतराय होता है । अक्षतयोनि करने से मैथुन सेवन करे । गर्भ गिराए इसलिए प्रवचन की मलीनता होती है । जीवहिंसा हो । इस प्रकार संयम विराधना, आत्म विराधना और प्रवचन विराधना आदि दोष होते हैं । इसलिए साधु को इस प्रकार की भिक्षा लेना न कल्पे । मूलकर्म करने से आत्मा नरक आदि दुर्गति में जाता है ।

सूत्र – ५५५-५६१

शास्त्र में तीन प्रकार की एषणा बताई है – गवेषणा, ग्रहण एषणा, ग्रास एषणा । गवेषणादोष रहित आहार की जाँच करना । ग्रहण एषणा – दोष रहित आहार ग्रहण करना । ग्रास एषणा – दोष रहित शुद्ध आहार का विधिवत् उपयोग करना । उद्गम के सोलह और उत्पादन के सोलह दोष, यह बत्तीस दोष बताए उसे गवेषणा

कहत हैं । गवेषणा का निरूपण पूरा हुआ ।

ग्रहण एषणा के दश दोष में आठ दोष साधु और गृहस्थ दोनों से उत्पन्न होते हैं । दो दोष (शक्ति और अपरिणत) साधु से उत्पन्न होते हैं ।

ग्रहण एषणा के चार निक्षेप – प्रकार बताएं हैं – नाम ग्रहण एषणा, स्थापना ग्रहण एषणा, द्रव्य ग्रहण एषणा, भाव ग्रहण एषणा । नाम ग्रहण एषणा – ग्रहण एषणा नाम हो वो । स्थापना ग्रहण एषणा – ग्रहण एषणा की स्थापना आकृति की हो वो । द्रव्य ग्रहण एषणा – तीन प्रकार से – सचित्त, अचित्त या मिश्र चीज को ग्रहण करना वो । भाव ग्रहण एषणा – दो प्रकार से – आगम भावग्रहण एषणा और नोआगम भावग्रहण एषणा । आगम भावग्रहण एषणा – ग्रहण एषणा से परिचित और उसमें उपयोगवाला । नोआगम भावग्रहण एषणा – दो प्रकार से – प्रशस्त भाव ग्रहण एषणा और अप्रशस्त भाव ग्रहण एषणा । प्रशस्त भावग्रहण एषणा – सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि । अप्रशस्त भावग्रहण एषणा – शंकित आदि दोषवाले आहार पानी ग्रहण करना । भावग्रहण एषणा में यहाँ अप्रशस्तपिंड़ का अधिकार है । अप्रशस्तपिंड़ के दश प्रकार बताए हैं ।

सूत्र – ५६२

शंकितदोष – आधाकर्मादि दोष की शंकावाला आहार ग्रहण करना । म्रक्षितदोष – सचित्त पृथ्वीकायादि खरड़ित आहार ग्रहण करना । पिहितदोष –सचित्त आदि चीज से ढ़ँका हुआ आहार ग्रहण करना । संहृतदोष – जिस बरतन में सचित्त आदि चीज रखी हो, वो खाली करके उससे जो आहार दे उसे ग्रहण करना वो । दायकदोष – शास्त्र में निषेध करनेवाले हाथ से आहार ग्रहण करना । उन्मिश्रदोष – सचित्त आदि से मिलावट किया गया आहार ग्रहण करना । अपरिणतदोष – सचित्त न हुआ हो वो आहार ग्रहण करना । लिप्तदोष – सचित्त आदि से खरड़ित हाथ, बरतन आदि से दिया आहार लेना । छर्दितदोष –जमीं पर गिराते हुए दिया आहार ग्रहण करना |

सूत्र – ५६३-५६५

शंकित दोष में चार भाँगा होते हैं । आहार लेते समय दोष की शंका एवं खाते समय भी शंका । आहार लेते समय दोष की शंका लेकिन खाते समय नहीं । आहार लेते समय शंका नहीं लेकिन खाते समय शंका । आहार लेते समय शंका नहीं और खाते समय भी शंका नहीं । चार भाँगा में दूसरा और चौथा भाँगा शुद्ध है ।

शंकित दोष में सोलह उद्गम के दोष और मक्षित आदि नौ ग्रहण एषणा के दोष ऐसे पच्चीस दोष में से जिस दोष की शंका हो वो दोष लगता है । जिन-जिन दोष की शंकापूर्वक ग्रहण करे या ले तो उस दोष के पापकर्म से आत्मा बँधता है । इसलिए लेते समय भी शंका न हो ऐसा आहार ग्रहण करना और खाते समय भी शंका न हो ऐसा आहार खाना शुद्ध भाँगा है । छद्मस्थ साधु अपनी बुद्धि के अनुसार उपयोग नहीं रखने के बावजूद भी अशुद्ध-दोषवाला आहार लिया जाए तो उसमें साधु को कोई दोष नहीं लगता । क्योंकि श्रुतज्ञान प्रमाण से वो शुद्ध बनता है

सूत्र – ५६६-५७२

आम तोर पर पिंड़ निर्युक्त आदि शास्त्र में बताई विधि का कल्प्य-अकल्प्य की सोच करने लायक श्रुतज्ञानी छद्मस्थ साधु शुद्ध समझकर शायद अशुद्ध दोषवाला आहार भी ग्रहण करे और वो आहार केवलज्ञानी को दे, तो केवलज्ञानी भी वो आहार दोषवाला जानने के बाद भी लेते हैं । क्योंकि यदि न ले तो श्रुतज्ञान अप्रमाण हो जाए । श्रुतज्ञान अप्रमाण होने से, पूरी क्रिया निष्फल हो जाए छद्मस्थ जीव को श्रुतज्ञान बिना उचित सावद्य, निरवद्य, पापकारी, पापरहित विधि, निषेध आदि क्रियाकांड़ का ज्ञान नहीं हो सकता । श्रुतज्ञान अप्रमाण होने से चारित्र की कमी होती है । चारित्र की कमी होने से मोक्ष की कमी होती है । मोक्ष की कमी होने से दीक्षा की सारी प्रवृत्ति निरर्थक – व्यर्थ होती है । क्योंकि दीक्षा का मोक्ष के अलावा दूसरा कोई प्रयोजन नहीं है ।

सूत्र – ५७३-५८१

म्रक्षित (लगा हुआ – चिपका हुआ) दो प्रकार से – सचित्त और अचित्त । सचित्त म्रक्षित तीन प्रकार से – पृथ्वीकाय म्रक्षित, अप्काय म्रक्षित, वनस्पतिकाय म्रक्षित । अचित्त म्रक्षित दो प्रकार से – लोगों में तिरस्कार रूप, माँस, चरबी, रूधिर आदि से म्रक्षित, लोगों में अनिन्दनीय घी आदि से म्रक्षित ।

सचित्त पृथ्वीकाय म्रक्षित – दो प्रकार से । शुष्क, आर्द्र । सचित्त अप्काय म्रक्षित – चार प्रकार से । पूर-कर्म स्निग्ध, पूर-कर्म आर्द्र, पश्चात्कर्म स्निग्ध, पश्चात्कर्म आर्द्र । पुरःकर्म साधु को वहोराने के लिए हाथ आदि पानी से साफ करे । पश्चात्कर्म – साधु को वहोराने के बाद हाथ आदि पानी से साफ करे । स्निग्ध-कुछ सामान्य पानी लगा हो वो । आर्द्र – विशेष पानी लगा हो वो । सचित्त वनस्पतिकाय म्रक्षित दो प्रकार से । प्रत्येक वनस्पतिकाय प्रचुर रसवाले – आम आदि के तुरत में किये हुए, ककड़े आदि से लगा हुआ । उसी प्रकार अनन्तकाय चीज के ककड़े आदि से लगे ।

पृथ्वीकाय, अप्काय, वनस्पतिकाय, हरएक में सचित्त, मिश्र और अचित्त तीन प्रकार होते हैं । लेकिन यहाँ केवल सचित्त का ही अधिकार लिया है ।

तेऊकाय, वायुकाय और त्रसकाय म्रक्षित नहीं हो सकते, क्योंकि लोक में ऐसा व्यवहार नहीं है । अचित्त में भस्म, राख आदि का म्रक्षितपन होता है । लेकिन वो हाथ या बरतन आदि को लगा हो तो उसका म्रक्षितदोष नहीं लगता ।

सचित्त – म्रक्षित के चार भाँगा – हाथ म्रक्षित और बरतन म्रक्षित । हाथ म्रक्षित लेकिन बरतन म्रक्षित नहीं । बरतन म्रक्षित लेकिन हाथ म्रक्षित नहीं । बरतन म्रक्षित नहीं और हाथ म्रक्षित भी नहीं । पहले तीन भाँगा का न कल्पे, चौथे भाँगा का कल्पे । गर्हित म्रक्षित में चारो भाँगा का न कल्पे । म्रक्षित चीज ग्रहण करने में चींटी, मक्खी आदि जीव की विराधना की सँभावना है । इसलिए ऐसा आहार लेने का निषेध किया है ।

सूत्र – ५८२-५९९

पृथ्वीकायादि के लिए दो प्रकार से – १. सचित्त, २. मिश्र । सचित्त के दो प्रकार – १. अनन्तर आंतरा रहित, २. परम्पर – आँतरावाला । मिश्र में दो प्रकार – १. अनन्तर, २. परम्पर । इस प्रकार हो सके ।

सामान्य से निक्षिप्त के तीन प्रकार हैं – १. सचित्त, २. अचित्त, ३. मिश्र । तीनों में चार-चार भाँगा होते हैं । इसलिए तीन चतुर्भंगी होती हैं वो ऐसे – १. सचित्त पर सचित्त रखा गया ? मिश्र पर सचित्त रखा गया, सचित्त पर मिश्र रखा हुआ । मिश्र पर मिश्र रखा हुआ । २. सचित्त पर सचित्त रखा हुआ । अचित्त पर सचित्त रखा हुआ सचित्त पर अचित्त रखा हुआ । ३. मिश्र पर मिश्र या अचित्त पर मिश्र रखा हुआ मिश्र पर अचित्त रखा हुआ।

सचित्त पृथ्वीकाय, अप्काय, तेऊकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय, हरएक पर सचित्त रखा हो उसके छ भेद होते हैं, हरएक पर अचित्त रखा हो उसके छ भेद होते हैं । उस अनुसार अप्काय पर रखे छह भेद, तेऊकाय के छह भेद, वायुकाय के छह भेद, वनस्पतिकाय के छह भेद और त्रसकाय के छह भेद कुल मिलाके ३६ भेद होते हैं । मिश्र पृथ्वीकाय आदि के ३६ भाँगा मिश्र पृथ्वीकाय आदि पर सचित्त पृथ्वीकाय आदि के ३६ भाँगा कुल १४४ भाँगा । इस प्रकार दूसरी और तीसरी चतुर्भंगी के १४४-१४४ भाँगा समझना । कुल मिलाके ४३२ भेद होते हैं । पुनः हरएक में अनन्तर और परम्पर ऐसे भेद होते हैं । तीन चतुर्भंगी में दूसरी और तीसरी चतुर्भंगी का चौथा भाँगा (अचित्त पर अचित्त) साधु को कल्पे । उसके अलावा भाँगा पर रहा न कल्पे ।

दूसरे मत से सचित्त पर सचित्त मिश्र रखा हुआ । अचित्त पर सचित्त मिश्र रखा हुआ । सचित्त मिश्र पर अचित्त रखा हुआ । अचित्त पर अचित्त रखा हुआ । इसमें भी पृथ्वीकायादि पर पृथ्वीकायादि के ३६-३६ भाँगा होते हैं । कुल १४४ भाँगा । पहले तीन भाँगा पर चीज साधु को न कल्पे, चौथा भाँगा पर रही चीज कल्पे । इसमें मिट्टी आदि पर सीधे पकवाना, मंड़क आदि रहे हो वो अनन्तर और बरतन में रहे पकवान आदि परम्पर पृथ्वीकाय निक्षिप्त कहलाते हैं । पानी पर घृतादि अनन्तर और उसी बरतन आदि में रहे परम्पर अप्काय निक्षिप्त होता है ।

अग्निकाय पर पृथ्वीकाय आदि सात प्रकार से निक्षिप्त होते हैं । विध्यात, मुर्म्मुर, अंगार, अप्राप्त, प्राप्त, समजवाले और व्युत्क्रांत । विध्यात – साफ प्रकार से पहले अग्नि न दिखे, पीछे से ईंधन ड़ालने से जलता हुआ दिखे । मुर्म्मुर-फीके पड़ गए, आधे बुझे हुए अग्नि के कण । अंगार – ज्वाला बिना जलते कोयले । अप्राप्त चूल्हे पर बरतन आदि रखा हो उसे अग्नि की ज्वाला छूती न हो । प्राप्त – अग्नि ज्वालाए बरतन को छूती हो । सम ज्वाला – ज्वालाएं बढ़कर बरतन के ऊपर तक पहुँची हो । व्युत्क्रांत ज्वालाएं इतनी बढ़ गई हो कि बरतन से ऊपर तक चली जाए ।

इन सात में अनन्तर और परम्पर ऐसे दोनों प्रकार से हो विध्यातादि अग्नि पर सीधे ही मंड़क आदि हो तो अनन्तर निक्षिप्त न कल्पे और बरतन आदि में हो वो परम्पर अग्निकाय निक्षिप्त कहलाता है । उसमें अग्नि का स्पर्श न होता हो तो लेना कल्पे । पहले चार में कल्पे और ५-६-७ में न कल्पे । कईं बार बड़े भट्ठे पर चीज रखी तो तो वो कब कल्पे वो बताते हैं । भट्ठा पर जो बरतन आदि रखा हो उसके चारों ओर मिट्टी लगाई हो, वो विशाल बड़ा हो, उसमें इक्षुरस आदि रहा हो वो रस आदि गृहस्थ को देने की ईच्छा हो तो यदि वो रस ज्यादा गर्म न हो और देते हुए बूँदे गिरे तो वो मिट्टी के लेप में सूख जाए यानि भट्ठे में बूँदें गिर न सके । और फिर अग्नि की ज्वाला बरतन को लगी न हो तो वो रस आदि लेना कल्पे । उसके अलावा न कल्पे । इस प्रकार सभी जगह समझ लेना । सचित्त चीज का स्पर्श होता हो तो लेना न कल्पे ।

बरतन चारों ओर लींपित, रस ज्यादा गर्म न हो, देते समय बूँद न गिरे । बूँद गिरे तो लेप में सूख जाए । इन चार पद को आश्रित करके एक दूसरे के साथ रखने से सोलह भाँगा होते हैं । इन सोलह भाँगा में पहले भाँगा का कल्पे, बाकी पंद्रह का न कल्पे ।

ज्यादा गर्म लेने में आत्म विराधना और पर विराधना होती है । काफी गर्म होने से साधु लेते समय जल जाए तो आत्म विराधना, गृहस्थ जल जाए तो पर विराधना । बड़े बरतन से देने से देनेवाले को कष्ट हो उस प्रकार गिर जाए तो छह काय की विराधना । इससे संयम विराधना लगे । इसलिए साधु को इस प्रकार का लेना न कल्पे । पवन की ऊठाई हुई चावल को पापड़ी आदि अनन्तर निक्षिप्त कहलाता है और पवन से भरी बस्ती आदि पर रोटियाँ, रोटी आदि हो तो अनन्तर निक्षिप्त । त्रसकाय में बैल, घोड़े आदि की पीठ पर सीधी चीज रखी हो तो अनन्तर निक्षिप्त और गुणपाट या अन्य बरतन आदि में चीज रखी हो तो परम्पर त्रसकाय निक्षिप्त कहलाता है ।

इन सबमें अनन्तर निक्षिप्त न कल्पे, परम्पर निक्षिप्त में सचित्त संघट्टन आदि न हो उस प्रकार से योग्य यतनापूर्वक ले सके । इस प्रकार ४३२ भेद हो सकते हैं ।

सूत्र – ६००-६०४

साधु को देने के लिए अशन आदि सचित्त, मिश्र या अचित्त हो और वो सचित्त, अचित्त या मिश्र से ढ़ँका हुआ हो यानि ऐसे सचित्त, अचित्त और मिश्र से ढ़ँके हुए की तीन चतुर्भंगी होती है । हरएक के पहले तीन भाँगा में लेना न कल्पे । अंतिम भाँगा में भजना यानि किसी में कल्पे किसी में न कल्पे ।

पहली चतुर्भंगी सचित्त से सचित्त ढ़ँका हुआ । मिश्र से सचित्त ढ़ँका हुआ, सचित्त से मिश्र ढ़ँका हुआ । मिश्र से मिश्र ढ़ँका हुआ ।

दूसरी चतुर्भंगी सचित्त से सचित्त ढ़ँका हुआ । अचित्त से सचित्त ढ़ँका हुआ सचित्त से अचित्त ढ़ँका हुआ और अचित्त से अचित्त ढ़ँका हुआ ।

तीसरी चतुर्भंगी – मिश्र से मिश्र ढ़ँका हुआ । मिश्र से अचित्त ढ़ँका हुआ, अचित्त से मिश्र ढ़ँका हुआ, अचित्त से अचित्त ढ़ँका हुआ ।

निक्षिप्त की प्रकार सचित्त पृथ्वीकायादि के द्वारा सचित्त पृथ्वीकायादि के ढ़ँके हुए ३६ भाँगा । मिश्र पृथ्वीकायादि से सचित्त मिश्र पृथ्वीकायादि ढ़ँके हुए ३६ भाँगा । मिश्र पृथ्वीकायादि से मिश्र पृथ्वीकायादि ढ़ँके हुए ३६ भाँगा । कुल १४४ भाँगा । तीन चतुर्भंगी के होकर ४३२ भाँगा ढ़ँके हुए । पुनः इन हरएक में अनन्तर और परम्पर ऐसे दो प्रकार हैं । सचित्त पृथ्वीकाय से सचित्त मंड़क आदि ढ़ँके हुए वो अनन्तर ढ़ँके हुए । सचित्त

पृथ्वीकाय से कलाड़ी आदि हो और उसमें सचित्त चीज हो वो परम्पर ढ़ँके हुए कहलाते हैं । उसी प्रकार सचित्त पानी से लड्डू आदि ढ़ँके हुए हो तो सचित्त अप्काय अनन्तर ढ़ँके हुए और लड्डू किसी बरतन आदि में रखे हो और वो बरतन आदि पानी से ढ़ँका हो तो वो परम्पर ढ़ँका हुआ कहलाता है । इस प्रकार सभी भाँगा में समझना ।

ढ़ँके हुए में १. भारी, वजनदार और २. हलका ऐसे दो प्रकार होते हैं । अचित्त पृथ्वीकायादि भारी से ढ़ँका हुआ । अचित्त पृथ्वीकायादि भारी हलके से ढ़ँका हुआ । अचित्त पृथ्वीकायादि हलकी भारी से ढ़ँका हुआ अचित्त पृथ्वीकायादि हलका हलके से ढ़ँका हुआ । इन हर एकमें पहले और तीसरे भाँगा का न कल्पे, दूसरे और चौथे भाँगा का कल्पे । सचित्त और मिश्र में चारों भाँगा का न कल्पे । भारी चीज उठाने से या रखने से लगना आदि और जीव विराधना की सँभावना हो रही है, इसलिए ऐसा ढ़ँका हुआ हो उसे उठाकर देवे तो वो साधु को लेना न कल्पे ।

सूत्र – ६०५-६१३

साधु को देने के लिए अनुचित सचित्त अगर सचित्त वस्तु जो भाजन में रही हो वो भाजन में से वो अनुचित चीज दूसरी सचित्त आदि चीज में या दूसरे भाजन में ड़ालकर वो खाली किए गए भाजन से साधु को दूसरा जो कुछ योग्य अशन आदि दिया जाए वो अशन आदि संहयत दोषवाला माना जाता है । इसमें भी निक्षिप्त की प्रकार चतुर्भंगी और भाँगा बनते हैं ।

सचित्त, अचित्त और मिश्र चीज दूसरे में बदलकर दी जाए, तो संहृत दोषवाला कहा जाता है । यहाँ ड़ालने को संहरण कहते हैं । इसमें सचित्त मिश्र और अचित्त की, सचित्त एवं मिश्र और अचित्त उन पदों की तीन चतुर्भंगी होती है । उसमें हरएक के पहले तीन भाँगा में न कल्पे, चौथे में किसी में कल्पे, किसी में न कल्पे । निक्षिप्त की प्रकार इसमें भी ४३२ भेद बने, उसे अनन्तर और परम्पर भेद मानना ।

चीज बदलने में जिसमें ड़ालना है, वो और जो चीज ड़ालनी है वो ऐसे दोनों के चार भाँगा इस प्रकार होते हैं । सूखी चीज सूखे में ड़ालना । सूखी चीज आर्द्र चीज में, आर्द्र चीज सूखे में, आर्द्र चीज आर्द्र में ड़ालना ।

इन हरएक में चार-चार भाँगा होते हैं । कुल सोलह भाँगा होते हैं । थोड़ी सूखी चीजें थोड़े सूखे में बदलना, थोड़ी सूखी चीज ज्यादा सूखे में बदलना, ज्यादा सूखी चीज थोड़े सूखे में बदलना, ज्यादा सूखी चीज ज्यादा सूखे में बदलना, थोड़ी सूखी चीजें थोड़े आर्द्र में बदलना, थोड़ी सूखी चीज ज्यादा आर्द्र में बदलना, ज्यादा सूखी चीज थोड़े आर्द्र में बदलना, ज्यादा सूखी चीज आर्द्र में बदलना, थोड़ी आर्द्र चीज थोड़े सूखे में ड़ालना, थोड़ी आर्द्र चीज ज्यादा आर्द्र में ड़ालना, ज्यादा आर्द्र थोड़े आर्द्र में ड़ालना, ज्यादा आर्द्र ज्यादा आर्द्र में ड़ालना ।

हलके भाजन में जहाँ कम से कम, उसमें भी सूखा या सूखे में आर्द्र, आर्द्र में सूखा या आर्द्र में आर्द्र बदला जाए तो वो आचीर्ण चीज साधु को लेना कल्पे, उसके अलावा अनाचीर्ण चीज कल्पे । सचित्त और मिश्र भाँगा की एक भी चीज न कल्पे और फिर भारी भाजन से बदले तो भी न कल्पे । क्योंकि भारी बरतन होने से देनेवाले को उठाने में – रखने में श्रम लगे, दर्द होना मुमकीन है । और बरतन गर्म हो और शायद गिर जाए या तूट जाए तो पृथ्वीकाय आदि जीव की विराधना होती है ।

सूत्र – ६१४-६४३

नीचे बताए गए चालीस प्रकार के दाता के पास से उत्सर्ग मार्ग से साधु को भिक्षा लेना न कल्पे । बच्चा – आठ साल से कम उम्र का हो उससे भिक्षा लेना न कल्पे । बुजुर्ग हाजिर न हो तो भिक्षा आदि लेने में कईं प्रकार के दोष रहे हैं । एक स्त्री नई-नई श्राविका बनी थी । एक दिन खेत में जाने से उस स्त्री ने अपनी छोटी बेटी को कहा कि, 'साधु भिक्षा के लिए आए तो देना ।' एक साधु संघाटक घूमते-घूमते उसके घर आए । बालिका वहोराने लगी। छोटी बच्ची को मुग्ध देखकर बड़े साधु ने लंपटता से बच्ची के पास से माँगकर सारी चीजें वहोर ली । माँ ने कहा था इसलिए बच्ची ने सब कुछ वहोराया । वो स्त्री खेत से आई तब कुछ भी न देखने से गुस्सा होकर बोली कि, क्यों सबकुछ दे दिया ? बच्ची ने कहा कि, माँग-माँगकर सबकुछ ले लिया । स्त्री गुस्सा हो गई और उपाश्रय आकर चिल्लाकर बोलने लगी कि, तुम्हारा साधु ऐसा कैसा कि बच्ची के पास से सबकुछ ले गए ? स्त्री का चिल्लाना

सुनकर लोग इकट्ठे हो गए और साधु की नींदा करने लगे । यह लोग केवल वेशधारी है, लूँटारे है, साधुता नहीं है । ऐसा-ऐसा बोलने लगे । आचार्य भगवंत ने शासन का अवर्णवाद होते देखा और आचार्य भगवंत ने उस साधु को बुलाकर, फिर से ऐसा मत करना ऐसा कहकर ठपका दिया । इस प्रकार शासन का ऊड्डाह आदि दोष रहे हैं, इसलिए इस प्रकार बुजुर्ग की गैर-मौजूदगी में छोटे बच्चे से भिक्षा लेना न कल्पे । अपवाद – वड़ील आदि मौजूद हो और वो दिलवाए तो छोटे बच्चे से भी भिक्षा लेना कल्पे ।

वृद्ध – ६० साल मतांतर से ७० साल की उम्रवाले वृद्ध से भिक्षा लेना न कल्पे । क्योंकि काफी वृद्ध से भिक्षा लेने में कईं प्रकार के दोष रहे हैं । बुढ़ापे के कारण से उसके मुँह से पानी नीकल रहा हो इसलिए देते-देते देने की चीज में भी मुँह से पानी गिरे, उसे देखकर जुगुप्सा होती है कि, 'कैसी बूरी भिक्षा लेनेवाले हैं ?' हाथ काँप रहे तो उससे चीज गिर जाए उसमें छकाय जीव की विराधना होती है । वृद्ध होने से देते समय खुद गिर जाए, तो जमीं पर रहे जीव की विराधना होती है, या वृद्ध के हाथ–पाँव आदि तूट जाए या ऊतर जाए । वृद्ध यदि घर का नायक न हो तो घर के लोगों को उन पर द्वेष हो कि यह वृद्ध सब दे देता है या तो साधु पर द्वेष करे या दोनों पर द्वेष करे ।

अपवाद – वृद्ध होने के बावजूद भी मुँह से पानी न नीकले, शरीर न काँपे, ताकतवर हो, घर का मालिक हो, तो उसका दिया हुआ लेना कल्पे ।

मत्त – दारू आदि पीया हो, उससे भिक्षा लेना न कल्पे । दारू आदि पीया होने से भान न हो, इसलिए शायद साधु को चिपक जाए या बकवास करे कि, अरे ! मुंड़ीआ ! क्यों यहाँ आए हो ? ऐसा बोलते हुए मारने के लिए आए या पात्रादि तोड़ दे, या पात्र में थूँक दे या देते-देते दारू का वमन करे, उससे कपड़े, शरीर या पात्र उल्टी से खरड़ित हो जाए । यह देखकर लोग साधु की नींदा करे कि, इन लोगों को धिक्कार है, कैसे अपवित्र है कि ऐसे दारू पीनेवाले से भी भिक्षा ग्रहण करते हैं । अपवाद – यदि वो श्रावक हो, परवश न हो यानि भान में हो और आसपास में लोग न हो तो दिया हुआ लेना कल्पे ।

उन्मत्त – महासंग्राम आदि में जय पाने से अभिमानी होकर या भून आदि का वमल में फँसा हो उससे उन्मत्त, उनसे भी भिक्षा लेना न कल्पे । उन्मत्त में ऊपर के मत्त में कहे अनुसार वमनदोष रहित के दोष लगते हैं ।

अपवाद – वो पवित्र हो, भद्रक हो और शान्त हो तो लेना कल्पे ।

वेपमान – शरीर काँप रहा हो उनसे भिक्षा लेना न कल्पे । शरीर काँपने से उनके हाथ से भिक्षा देते शरीर गिर जाए या पात्र में ड़ालते शरीर बाहर गिरे या भाजन आदि हाथ से नीचे गिर जाए, तो भाजन तूट जाए, छह काय जीव की विराधना आदि होने से भिक्षा लेना न कल्पे । अपवाद – शरीर काँप रहा हो, लेकिन उसके हाथ न काँपते हो तो कल्पे । ज्वरित – बुखार आ रहा हो तो उससे लेना न कल्पे । ऊपर के अनुसार दोष लगे अलावा उसका बुखार शायद साधु में संक्रमे, लोगों में उड्डाह हो कि, यह कैसे आहार लंपट है बुखारवाले से भिक्षा लेते हैं । इसलिए बुखारवाले से भिक्षा लेना न कल्पे ।

अपवाद – बुखार उतर गया हो – भिक्षा देते समय बुखार न हो तो कल्पे ।

अंध – अंधो से भिक्षा लेना न कल्पे । शासन का ऊड्डाह होता है कि, यह अंधा दे सके ऐसा नहीं है फिर भी यह पेटभरे साधु उनसे भिक्षा ग्रहण करते हैं । अंधा देखता नहीं होने से जमीं पर रहे छह जीवनीकाय विराधना करे, पत्थर आदि बीच में आ जाए तो नीचे गिर पड़े तो उसे लगे, भाज उठाया हो और गिर पड़े तो जीव की विराधना हो। देते समय बाहर गिर जाए आदि दोष होने से अंधे से भिक्षा लेना न कल्पे । अपवाद – श्रावक या श्रद्धालु अंधे से उसका पुत्र आदि हाथ पकड़कर दिलाए तो भिक्षा लेना कल्पे ।

प्रगलित – गलता को आदि चमड़ी की बीमारी जिसे हुई हो उनसे भिक्षा लेना न कल्पे । भिक्षा देने से उसे कष्ट हो, गिर जाए, दस्त-पिशाब अच्छी प्रकार से साफ न कर सके तो अपवित्र रहे । उनसे भिक्षा लेने में लोगों को जुगुप्सा हो, छह जीवनीकाय की विराधना आदि दोष लगे, इसलिए उनसे भिक्षा लेना न कल्पे । अपवाद – ऊपर

बताए दोष को जिस अवसर में सँभावना न हो और आसपास में दूसरे लोग न हो तो भिक्षा लेना कल्पे ।

आरूढ – पाँव में पादुका-जूते आदि पहना हो उनसे भिक्षा लेना न कल्पे ।

हस्तान्दु – दोनों हाथ लकड़े की हेंड़ में ड़ाले हो उनसे भिक्षा लेना न कल्पे ।

निगड़ – पाँव में बेड़ियाँ हो उनसे भिक्षा लेना न कल्पे ।

छिन्नहस्तवाद – हाथ या पाँव कटे हुए हो ऐसे ठूँठे या लंगड़े से भिक्षा लेना न कल्पे ।

त्रिराशिक – नपुंसक से भिक्षा लेना न कल्पे । नपुंसक से भिक्षा लेने में स्व-पर और उभय का दोष रहा है । नपुंसक से बार-बार भिक्षा लेने से काफी पहचान होने से साधु को देखकर उसे वेदोदय हो और कुचेष्टा करे यानि दोनों को मैथुनकर्म का दोष लगे । बार-बार न जाए लेकिन किसी दिन जाए तो मैथुनदोष का अवसर न आए, लेकिन लोगों में जुगुप्सा होती है कि, यह साधु नपुंसक से भी भिक्षा ग्रहण करते हैं, इसलिए साधु भी नपुंसक होंगे। इत्यादि दोष लगे ।

अपवाद – नपुंसक अनासेवी हो, कृत्रिम प्रकार से नपुंसक हुआ हो, मंत्र, तंत्र से नपुंसक हुआ हो, श्राप से नपुंसक हुआ हो तो उससे भिक्षा लेना कल्पे ।

गर्विणी – पास में प्रसवकाल-गर्भ रहे नौ महिने हुए हो ऐसे गर्भवाली स्त्री से भिक्षा लेना न कल्पे । गर्भवाली स्त्री से भिक्षा लेने में स्त्री को उठते-बैठते भीतर रहे गर्भ के जीव को दर्द होता है, इसलिए उनसे भिक्षा मत लेना । अपवाद – गर्भ रहे नौ महीने न हुए हो, भिक्षा देने में कष्ट न हो, बैठी हो तो बैठे-बैठे और खड़ी हो तो खड़े-खड़े भिक्षा दे तो कल्पे । जिनकल्पी साधु के लिए तो जिस दिन गर्भ रहे उसी दिन से लेकर जब तक बच्चा माँ का दूध पीता हो तब तक उस स्त्री से भिक्षा लेना न कल्पे ।

बालवत्सा – माँ का दूध पीता हुआ बच्चा गोद में हो और माँ बच्चे को छोड़कर भिक्षा दे तो उनसे भिक्षा लेना न कल्पे । बच्चे को जमीं पर या माँची में रखकर भिक्षा दे तो शायद उस बच्चे को बिल्ली या कूत्ता आदि माँस का टुकड़ा या खरगोश का बच्चा समझकर मुँह से पकड़कर ले जाए तो बच्चा मर जाए । भिक्षा देते समय उस स्त्री के हाथ खरड़ित हो उन कर्कश हाथ से बच्चे को वापस हाथ में लेने से बच्चे को दर्द हो इत्यादि दोष के कारण से उन स्त्री से भिक्षा लेना न कल्पे । अपवाद – बच्चा बड़ा हो, स्तनपान न करता हो तो ऐसी स्त्री से भिक्षा लेना कल्पे। क्योंकि वो बड़ा होने से उसे उठा ले जाना मुमकीन नहीं है ।

भोजन कर रहे हो – उनसे भिक्षा लेना न कल्पे । भोजन कर रहे हो और भिक्षा देने के लिए उठे तो हाथ धोए तो अप्काय आदि की विराधना होती है । हाथ साफ किए बिना दे तो लोगों में जुगुप्सा हो कि, झूठी भिक्षा लेते हैं । इसलिए भोजन करते हो उनसे भिक्षा लेना न कल्पे । अपवाद – हाथ झूठे न हुए हो या भोजन करने की शुरूआत न की हो तो उनसे भिक्षा लेना कल्पे ।

मथ्नंती – दहीं वलोती हो उनसे भिक्षा लेना न कल्पे । दहीं आदि वलोती हो तो वो संसक्त हो तो वो संसक्त दहीं आदि से खरड़ित हाथ से भिक्षा देने से वो रस जीव का विनाश है इसलिए उनके हाथ से भिक्षा लेना न कल्पे । अपवाद –वलोणा पूरा हो गया हो, हाथ सूखे हो तो लेना कल्पे या फिर वलोणा में हाथ न बिगाड़े हो तो लेना कल्पे

भज्जंती – चूल्हे पर तावड़ी आदि में चने आदि पकाती हो तो भिक्षा लेना न कल्पे ।

अपवाद – चूल्हे पर से तावड़ी उतार ली हो या संघट्टो न हो तो कल्पे ।

दलंती – चक्की आदि में आँटा पीसती हो तो भिक्षा लेना न कल्पे ।

अपवाद – साँबिल ऊपर किया हो और साधु आ जाए तो उठाए हुए साँबिल में कण न चिपके हो तो साँबिल निर्जीव जगह में रखकर दो तो लेना कल्पे ।

पिसंती – पत्थर, खाणीया आदि में पिसती हो वो भिक्षा न कल्पे । अपवाद – पिस लिया हो, सचित्त का संघट्टो न हो उस समय साधु आए और दे तो लेना कल्पे ।

पिजंती – रूई अलग करती हो तो लेना न कल्पे ।

रूचंती – कपास में से रूई अलग नीकालती हो तो लेना न कल्पे ।

कंतंती – रूई में से सुत्त बुनती हो तो लेना न कल्पे । मद्माणी – रूई की पुणी बनाती हो तो लेना न कल्पे ।

अपवाद – पिंजन आदि काम पूरा हो गया हो या अचित्त रूई को पिंजती हो तो भिक्षा लेना कल्पे । या भिक्षा देने के बाद हाथ साफ न करे तो लेना कल्पे । यानि पश्चात् कर्मदोष न लगे ऐसा हो तो लेना कल्पे ।

सचित्त पृथ्वीकाय आदि चीज (सचित्त नमक, पानी, अग्नि, पवन भरी बस्ती, फल, मत्स्य आदि) हाथ में हो तो भिक्षा लेना न कल्पे ।

साधु को भिक्षा देने के लिए सचित्त चीज नीचे रखकर दे तो लेना न कल्पे ।

सचित्त चीज पर चलती हो और दे तो न कल्पे ।

सचित्त चीज का संघट्टो करते हुए दे, सिर में सचित्त फूल का गजरा, फूल आदि हो तो भिक्षा लेना न कल्पे।

पृथ्वीकाय आदि का आरम्भ करती हो उनसे लेना न कल्पे । कुदाली आदि से जमीं खुदती हो तब पृथ्वीकाय का आरम्भ हो, सचित्त पानी में स्नान करती हो, कपड़े धोती हो या पेड़ को पानी देती हो तो अप्काय का आरम्भ होता है, चूल्हा जलाती हो तो तेऊकाय का आरम्भ, पंखा ड़ालती हो या बस्ती में पवन भरती हो तो वायुकाय का आरम्भ होता है, सब्जी काटती हो तो वनस्पतिकाय का आरम्भ, मत्स्यादि छेदन करती हो तो त्रसकाय का आरम्भ । इस प्रकार आरम्भ करनेवाला भिक्षा देता हो तो उनसे भिक्षा लेना न कल्पे ।

लिप्तहस्त – दहीं आदि से हाथ खरड़ित हो तो उनसे भिक्षा लेना न कल्पे । हाथ खरड़ित हो तो हाथ पर जीवजन्तु चिपके हो तो उसकी विराधना इसलिए न कल्पे ।

लिप्तमात्र – दहीं आदि से खरड़ित बरतन दे तो लेना न कल्पे ।

उद्वर्तती – बड़ा, भारी या गर्म बरतन आदि उठाकर भिक्षा दे तो लेना न कल्पे । बड़ा बरतन बार-बार घूमाया न जाए इसलिए उस बरतन के नीचे मकोड़े, चींटी आए हो उसे उठाकर वापस रखने से नीचे के कीड़े – मकोड़े मर जाए, उठाने में कष्ट लगे, जल जाए आदि दोष रहे हैं । बड़े-बड़े बरतन उठाकर दे तो वो भिक्षा न कल्पे।

साधारण – काफी लोगों की मालिकी वाली चीज सबकी अनुमति बिना दे रहे हो तो वो भिक्षा न कल्पे, द्वेष आदि दोष लगे इसलिए न कल्पे ।

चोरी किया हुआ – चोरी छूपे या चोरी करके देते हो तो भिक्षा लेना न कल्पे । नौकर-बहू आदि ने चोरीछूपे से दिया हुआ साधु ले और पीछे से उसके मालिक या सास को पता चले तो उसे मारे, बाँधे, गुस्सा करे आदि दोष हो इसलिए ऐसा आहार लेना साधु को न कल्पे ।

प्राभृतिका – लहाणी करने के लिए यानि दूसरों को देने के लिए बरतन में से दूसरे बरतन में नीकाला हो उसे दे तो साधु को लेना न कल्पे ।

सप्रत्यपाय – आहार देने से देनेवाले को या लेनेवाले के शरीर को कोई अपाय-नुकसान हो तो वो लेना न कल्पे । यह अपाय – ऊपर, नीचे और तीरछे ऐसे तीन प्रकार से । जैसे कि खड़े होने में सिर पर खींटी, दरवाजा लगे ऐसा हो, नीचे जमीं पर काँटे, काच आदि पड़े हो वो लगने की सँभावना हो, आसपास में गाय, भैंस आदि हो और वो शींग मारे ऐसा मुमकीन हो या ऊपर छत में सर्प आदि लटकते हो और वो खड़े होने से ड़ँस ले ऐसा हो तो साधु को भिक्षा लेना न कल्पे ।

अन्य उद्देश – कार्पटिकादि भिक्षाचर आदि को देने के लिए या बलि आदि का देने के लिए रखा हुआ आहार लेना न कल्पे । ऐसा आहार ग्रहण करने में अदत्तादान का दोष लगता है । क्योंकि वो आहार उस कार्पटिकादि के लिए कल्पित है । और फिर ग्लान आदि साधु को उद्देशकर आहार दिया हो तो उस ग्लान आदि के अलावा दूसरों को उपयोग के लिए देना न कल्पे, लेकिन यदि ऐसा कहा हो कि, वो ग्लान आदि न ले तो दूसरे कोई भी ले तो वो आहार दूसरों को लेना कल्पे । उसके अलावा न कल्पे ।

आभोग – साधु को न कल्पे ऐसी चीज जान-बूझकर दे तो वो लेना न कल्पे । कोई ऐसा सोचे कि, महानुभाव साधु हंमेशा सूखा, रूखा-सूखा भिक्षा में जो मिले वो खाते हैं, तो घेबर आदि बनाकर दूँ कि जिससे उनके शरीर को सहारा मिले, शक्ति मिले । ऐसा सोचकर घेबर आदि बनाकर साधु को दे या कोई दुश्मन साधु का नियम भंग करवाने के इरादे से अनेषणीय बनाकर दे । जान-बूझकर आधाकर्मी आहार आदि दे तो साधु को ऐसा आहार लेना न कल्पे ।

अनाभोग – अनजाने में साधु को कल्पे नहीं ऐसी चीज दे तो वो लेना न कल्पे ।

सूत्र – ६४४-६५०

सचित्त, अचित्त और मिश्र एक दूजे में मिलावट करके दिया जाए तो तीन चतुर्भंगी होती है । उन हरएक के पहले तीन भाँगा में न कल्पे । चौथे भाँगा में कोई कल्पे, कोई न कल्पे । इसमें भी निक्षिप्त की प्रकार कुल ४३२ भाँगा समझ लेना । चीज मिलावट करने में जो मिलावट करनी है और देने की चीज दोनों के मिलकर चार भाँगा होते हैं और सचित्त मिश्र, सचित्त अचित्त और मिश्र अचित्त पद से तीन चतुर्भंगी होती है ।

पहली चतुर्भंगी – सचित्त चीज में सचित्त चीज मिलाई मिश्र चीज में सचित्त चीज मिलाकर, सचित्त में मिश्र मिलाकर, मिश्र में मिश्र मिलाकर ।

दूसरी चतुर्भंगी – सचित्त चीज में सचित्त चीज मिलाकर, अचित्त चीज में सचित्त चीज मिलाकर, सचित्त चीज में अचित्त चीज मिलाकर अचित्त चीज में अचित्त चीज मिलाकर ।

तीसरी चतुर्भंगी – मिश्र चीज में मिश्र चीज मिलाकर अचित्त में मिश्र मिलाकर, मिश्र में अचित्त मिलाकर अचित्त चीज में अचित्त चीज मिलाकर ।

निक्षिप्त की प्रकार सचित्त पृथ्वीकायादि के ३६ भाँगा । सचित्त पृथ्वीकायादि में मिश्र पृथ्वीकायादि के ३६। मिश्र पृथ्वीकायादि में मिश्र पृथ्वीकायादि के ३६ भाँगा । कुल १४४ तीन चतुर्भंगी के कुल ४३२ भाँगा होते हैं ।

मिलाने में सूखा और आर्द्र हो । वो दोनों मिलाकर चतुर्भंगी बने और फिर उसमें थोड़ी और ज्यादा उसके सोलह भाँगा होती है । सूखी चीज में सूखी चीज मिलाना, सूखी चीज में आर्द्र चीज मिलाना, आर्द्र चीज में सूखी चीज मिलाना, सूखी चीज में सूखी चीज मिलाना यहाँ भी हलके भाजन में अचित्त – थोड़ा सूखे में सूखा या थोड़ा सूखे में थोड़ा आर्द्र या थोड़े आर्द्र में थोड़ा सूखा या थोड़ा आर्द्र में थोड़ा आर्द्र मिलाया जाए तो वो चीज साधु को लेना कल्पे । उसके अलावा लेना न कल्पे । सचित्त और मिश्र भाँगा की तो एक भी न कल्पे । और फिर भारी भाजन में मिलाया जाए तो भी न कल्पे ।

सूत्र – ६५१-६५४

अपरिणत (अचित्त न हो वो) के दो प्रकार । द्रव्य अपरिणत और भाव अपरिणत । वो देनेवाले और लेनेवाले दोनों के रिश्ते से दोनों के दो-दो प्रकार होते हैं । देनेवाले से द्रव्य अपरिणत – अशन आदि अचित्त न बना हो तो पृथ्वीकायादि छह प्रकार से । लेनेवाले से द्रव्य अपरिणत – अचित्त न बना हो पृथ्वीकायादि छह प्रकार से । अपरिणत दृष्टांत – दूध में मेलवण ड़ाला हो, उसके बाद जब तक दहीं न बने तब तक वो अपरिणत कहलाता है । नहीं दूध में नहीं दहीं में । इस प्रकार पृथ्वीकायादि में अचित्त न बना हो तब तक अपरिणत कहलाता है । यानि दूध, दूधपन से भ्रष्ट होकर दहींपन पाने पर परिणत कहलाता है और दूधपन-अव्यवस्थित पानी जैसा हो तो अपरिणत कहलाता है । अशन आदि द्रव्य दातार की सत्ता में हो तब देनेवाले का गिना जाए और लेने के बाद लेनेवाले की सत्ता मानी जाए ।

देनेवाले से भाव अपरिणत – जिस अशन आदि के दो या ज्यादा सम्बन्धी हो और उसमें से एक देता हो और दूसरे की ईच्छा न हो वो । लेनेवाले से भाव अपरिणत – जो अशन आदि लेते समय संघाट्टक साधु में से एक साधु को अचित्त या शुद्ध लगता हो और दूसरे साधु को अचित्त या अशुद्ध लगता हो वो । (प्रश्न) सामान्य अनिषष्ट और देनेवाले से भाव अपरिणत में क्या फर्क है ? अनिसृष्ट में सभी मालिक वहाँ मौजूद में हो तब वो सामान्य

अनिसृष्ट कहलाता है और देनेवाले भाव अपरिणत में मालिक वहीं हाजिर हो इतना फर्क । भाव से अपरिणत भिक्षा लेना न कल्पे । क्योंकि उसमें कलह आदि दोष की सँभावना है । दाता के विषय वाला भाव अपरिणत वो भाई या स्वामी सम्बन्धी है, जब कि ग्रहण करनेवाला विषयवाला भाव अपरिणत साधु सम्बन्धी है ।

सूत्र – ६५५-६६८

लिप्त का अर्थ है – जिस अशनादि से हाथ, पात्र आदि खरड़ाना, जैसे की दहीं, दूध, दाल आदि द्रव्यों को लिप्त कहलाते हैं । जिनेश्वर परमात्मा के शासन में ऐसे लिप्त द्रव्य लेना नहीं कल्पता, क्योंकि लिप्त हाथ, भाजन आदि धोने में पश्चात्कर्म लगते हैं तथा रस की आसक्ति का भी संभव होता है । लिप्त हाथ, लिप्त भाजन, शेष बचे हुए द्रव्य के आठ भेद होते हैं । अलिप्त द्रव्य लेने में दोष नहीं लगता, अपवाद से लिप्त द्रव्य लेना कल्पता है ।

हे भगवंत ! आपने कहा कि लिप्त ऐसे दहीं आदि ग्रहण करने में पश्चात्कर्म आदि दोष होते हैं, इसलिए साधु को लेपयुक्त द्रव्य नहीं लेने चाहिए, तो फिर साधु को भोजन ही नहीं करना चाहिए; जिससे पश्चात्कर्म दोष लगे ही नहीं । भिक्षा के लिए आने जाने का कष्ट भी न होवे, रस की आसक्ति आदि दोष न लगे, नित्य तप करे, फिर आहार करने का प्रयोजन ही क्या ? हे महानुभव ! जीवनपर्यन्त उपवास करने से चिरकाल तक होनेवाले तप, संयम, नियम, वैयावच्च आदि की हानि होती है, इसीलिए जीवनपर्यन्त का तप नहीं हो सकता ।

यदि जीवनपर्यन्त का तप न करे तो फिर उत्कृष्ट छह मास के उपवास तो बताए हैं ना ? छह महिने के उपवास करे और पारणा में लेपरहित ग्रहण करे, फिर छह मास के उपवास करे ? यों छह-छह मास के उपवास करने की शक्ति होवे तो खुशी से करे, इसमें निषेध नहीं ।

यदि छह मास का तप न हो सके तो एक एक दिन कम करते यावत् उपवास के पारणे में आयंबिल करे । ऐसा करने से लेपरहित द्रव्य ग्रहण हो सकते हैं और निर्वाह भी होता है । उपवास भी न कर सके तो नित्य आयंबिल करे । यदि ऐसी भी शक्ति न होवे और उस काल में तथा भविष्य में आवश्यक ऐसे पड़िलेहण, वैयावच्चादि संयम योगो में हानि होती हो तो वह ऐसा भी तप कर सकता है । लेकिन वर्तमान काल में आखरी संघयण है, इसीलिए ऐसी शारीरिक शक्ति नहीं है कि यह तप भी कर सके । इसीलिए तीर्थंकर और गणधर भगवंतोने ऐसा उपदेश नहीं दिया है ।

आप कहते हैं कि आखरी संघयण होने से ऐसा तप निरंतर नहीं हो सकता, तो फिर महाराष्ट्र, कौशल आदि देश में जन्मे हुए लोग हंमेशा खट्टा पानी, चावल आदि खाते हैं और जीवनपर्यन्त कार्य आदि कर सकते हैं, तो फिर जिसके लिए मोक्ष ही एक प्रयोजन है ऐसे साधु क्यों निर्वाह नहीं कर सकते ? साधु तो आयंबिल आदि से अच्छी प्रकार निर्वाह कर सकते हैं । साधु को उपधि, शय्या और आहार यह तीनो शीत होने से निरंतर आयंबिल करने से आहार का पाचन नहीं होता, इस से अजीर्ण आदि दोष उत्पन्न होते हैं, जब कि गृहस्थ तो खट्टा पानी और चावल खाते हुए भी उपधि-शय्या शीतकाल में उष्ण होने से आहार का पाचन हो जाता है । साधु के लिए तो आहार, उपधि, शय्या उष्णकाल में भी शीत होते हैं । उपधि का काँप साल में एक बार नीकले, शय्या को अग्नि का ताप न लगने से एवं आहार शीत होने से हौजरी में यथायोग्य पाचन नहीं होता, इसीलिए उसे अजीर्ण, ग्लानता आदि होते हैं । इसीलिए साधु को तक्र आदि की छूट दी है, फिर भी कहा है कि प्रायः साधुओं को विगईयाँ – घी, दूध, दहीं आदि ग्रहण किए बिना ही अपने शरीर का निर्वाह करना, कदाचित् यह शरीर ठीक न हो तो संयम योग की वृद्धि के लिए एवं शरीर की शक्ति टीकाने के लिए विगईयाँ ग्रहण करे । विगई में तक्र आदि उपयोगी है इसीलिए उसका ग्रहण करे । अन्य विगईयाँ तो विशेष कारण हो तो ही ग्रहण करे । क्योंकि विगई ज्यादा लेपकृत् द्रव्य होने से उसकी गृद्धि बढ़ती है ।

लेपरहित द्रव्य – सूखे पकाये हुए चावल आदि, मांडा, जव का साथवा, उडद, चोला, वाल, वटाणे, चने, तुवर आदि सब सूखे हो तो भाजन में चीपकते नहीं हैं । और भाजन लिप्त न होने से फिर धोना नहीं पड़ता ।

अल्प लेपयुक्त द्रव्य – शब, कोद्रव, तक्रयुक्त भात, पकाये हुए मुंग, दाल आदि द्रव्यों में पश्चात्कर्म कदाचित

होवे कदाचित नहीं भी होवे । बहु लेपयुक्त द्रव्य – खीर, दूध, दहीं, दूधपाक, तेल, घी, गुड़ का पानी इत्यादि । जिस द्रव्य से भाजन खरड़ाते हैं और देने के बाद वह भाजन अवश्य धोना पड़े ऐसे द्रव्यों को पापभीरु साधु ग्रहण नहीं करते हैं । अपवाद – पश्चात्कर्म न होवे ऐसे द्रव्य लेना कल्पे ।

खरड़ाये हुए हाथ, खरड़ाया हुआ भाजन एवं सविशेष द्रव्य तथा निरवशेष द्रव्य के योग से आठ भेद होते हैं । इन आठ भेदों में १-३-५-७ भेदवाला कल्पता है और २-४-६-८ भेदवाला नहीं कल्पता जैसे कि – खरड़ाये हुए हाथ, खरड़ाया हुआ भाजन और सविशेष द्रव्य पहला भेद है तो वह कल्पता है । हाथ-भाजन या हाथ और भाजन दोनों, यदि साधु के आने से पहले गृहस्थने अपने लिए लिप्त किए हो मगर साधु के लिए न लिप्त किए हो तो उसमें पश्चात्कर्म दोष नहीं होता । जिसमें द्रव्य शेष बच जाता हो उसमें साधु के लिए भी हाथ या पात्र खरड़ाये हुए हो तो भी साधु के लिए धोने का नहीं इसीलिए साधु को लेना कल्पता है ।

सूत्र – ६६९-६७०

गृहस्थ आहारादि को वहोराते समय भूमि पर बूँदें गिराये तो वह 'छर्दितदोषयुक्त' आहार कहलाता है । उसमें सचित्त, अचित्त एवं मिश्र की तीन चतुर्भंगी होती है । उसका पृथ्वीकायादि छह के साथ भेद कहने से कुल ४३२ भेद होते हैं ।

प्रथम चतुर्भंगी – सचित्त वस्तु सचित्त में गिरे, मिश्र वस्तु सचित्त में गिरे, सचित्त वस्तु मिश्र में गिरे और अचित्त वस्तु अचित्त में गिरे ।

दूसरी चतुर्भंगी – सचित्त वस्तु सचित्त में गिरे, अचित्त वस्तु सचित्त में गिरे, सचित्त वस्तु अचित्त में गिरे और अचित्त वस्तु अचित्त में गिरे ।

तीसरी चतुर्भंगी – मिश्रवस्तु मिश्र में गिरे, अचित्त वस्तु मिश्र में गिरे, अचित्त वस्तु अचित्त में गिरे और मिश्र वस्तु अचित्त में गिरे ।

सचित्त पृथ्वीकायादि में सचित्त पृथ्वीकायादि के ३६ भेद, सचित्त पृथ्वीकायादि में मिश्र पृथ्वीकायादि के ३६ भेद, मिश्र पृथ्वीकायादि में सचित्त पृथ्वीकायादि के ३६ भेद और मिश्र पृथ्वीकायादि में मिश्र पृथ्वीकायादि के ३६ भेद होते हैं । ऐसे कुल १४४ भेद होते हैं, तीन चतुर्भंगी के ४३२ भेद होते हैं । किसी भी भेद में साधु को भिक्षा लेना न कल्पे । यदि वह 'छर्दित दोष' युक्त भिक्षा ग्रहण करे तो – १. आज्ञाभंग, २. अनवस्था, ३. मिथ्यात्व, ४. संयम विराधना, ५. आत्म विराधना, ६. प्रवचन विराधना आदि दोष लगते हैं । इसी प्रकार औद्देशिकादि दोषयुक्त भिक्षा लेने में भी मिथ्यात्व आदि दोष लगते हैं यह समझ लेना ।

गवेषणा और ग्रहण एषणा के दोष बताये । अब ग्रासैषणा के दोष बताते हैं –

सूत्र – ६७१-६७६

ग्रास एषणा के चार निषेप हैं – १. नाम ग्रासैषणा, २. स्थापना ग्रासैषणा, ३. द्रव्य ग्रासैषणा, ४. भाव ग्रासैषणा । द्रव्य ग्रासैषणा में मत्स्य का दृष्टान्त । नाम ग्रासैषणा – ग्रासएषणा ऐसा किसी का नाम होता । स्थापना ग्रासैषणा – ग्रासएषणा की कोई आकृति बनाई हो । द्रव्य ग्रासैषणा के तीन भेद हैं – सचित्त, अचित्त या मिश्र । भाव ग्रासैषणा के दो भेद हैं – आगम भावग्रासैषणा और नोआगम भावग्रासैषणा । आगम भावग्रासैषणा का ज्ञाता एवं उसमें उपयोगवाला नोआगम भावग्रासैषणा के दो भेद – प्रशस्त एवं अप्रशस्त । प्रशस्त संयोजनादि पाँच दोषयुक्त आहार करना कल्पे ।

द्रव्य ग्रासैषणा का दृष्टांत – कोई एक मच्छीमार मच्छी पकड़ने सरोवर गया, काँटे में गल माँस का टुकड़ा पीरोकर सरोवर में ड़ाला । उस सरोवर में एक बुद्धिमान एवं वृद्ध मत्स्य था । उसने वहाँ आकर सावधानी से आसपास का माँस खा लिया । पूँछ से काँटे को हिलाकर चला गया । मच्छीमार ने समझा कि मच्छी फँस गई है । काँटा बाहर नीकाला तो वहाँ न मच्छी थी न माँस । तीन बार ऐसा ही हुआ । मच्छीमारने सोचा कि ऐसा क्यों होता है ? तब मच्छीने बताया कि हे मच्छीमार ! सुन – एक दफा मैं प्रमाद में था, एक बगले ने मुझे पकड़ा । बगला

भक्ष्य को उछालकर फिर खा जाता है । बगले ने मुझे ऊंचे उछाला । मैंने सोचा कि यदि मैं उसके मुख में गिरुंगा तो वह मुझे खा जाएगा, इसीलिए मं तीर्छा गिरा, इस प्रकार तीन दफा हुआ और मैं भाग नीकला । इक्कीस बार जाल में से बच नीकला । एक दफा तो मच्छीमार के हाथ में आने के बाद भी भाग नीकला । ऐसा मेरा पराक्रम है । तु मुझे पकड़ना चाहता है ? यह कैसा तुम्हारा निर्लज्जत्व है ?

इस दृष्टान्त का उपनयन –सार इस प्रकार है । मछलियाँ के स्थान पर साधु, माँस के स्थान पर आहार पानी, मछवारे के स्थान पर रागादि दोषसमूह । जिस प्रकार मछली किसी प्रकार फँसी न हो ऐसे साधु को भी दोष न लगे उस प्रकार से आहार ग्रहण करे, किसी दोष में न फँसे । १६ उद्गम के, १६ उत्पादना के और १० एषणा के ४२ दोषरहित आहार पाने के बाद साधुको आत्माशिक्षा देनी चाहिए कि, 'हे जीव ! तुम किसी दोष में न फँसे और ४२ दोष रहित आहार लाए हो, तो अब लेते समय मूर्च्छावश होकर रागद्वेष में न फँसो उसका खयाल रखना ।'

सूत्र – ६७७-६८३

अप्रशस्त भावग्रासएषणा – उसके पाँच प्रकार हैं वो इस प्रकार – संयोजना, खाने के दो द्रव्य स्वाद के लिए इकट्ठे करना । प्रमाण – जरुरत से ज्यादा आहार खाना । अंगार – खाते समय आहार की प्रशंसा करना । धूम्र – खाते समय आहार की नींदा करना । कारण – आहार लेने के छह कारण सिवा आहार लेना ।

संयोजना यानि द्रव्य इकट्ठा करना । वो दो प्रकार से द्रव्य इकट्ठा करना और भाव से इकट्ठा करना । द्रव्य से इकट्ठा करना । वो दो प्रकार से बाह्य संयोजना, अभ्यंतर संयोजना । बाह्य संयोजना स्वाद की खातिर दो द्रव्य दूध, दहीं आदि में शक्कर आदि मिलाना । उपाश्रय के बाहर गोचरी के लिए गए हो तो वहाँ दो द्रव्य इकट्ठा करना यानि बाह्य संयोजना । अभ्यंतर संयोजना – उपाश्रय में आकर खाते समय स्वाद की खातिर दो द्रव्य इकट्ठा करना वो तीन प्रकार से । पात्र में, हाथ में और मुँह में यानि अभ्यंतर संयोजना । गोचरी के लिए घूमने से देर लगे ऐसा हो तो सोचे कि, 'यदि यहाँ दो द्रव्य इकट्ठे करूँगा तो तो स्वाद बिगड़ जाएगा, इसलिए खाते समय इकट्ठे करूँगा । ऐसा सोचकर दोनों द्रव्य अलग-अलग ले । फिर उपाश्रय में आकर खाते समय दो द्रव्य मिलाए । पात्र संयोजना – अलग अलग द्रव्य पात्र में मिलाकर खाए । हस्त संयोजना – नीवाला हाथ में फिर उस पर दूसरी चीज ड़ालकर खाए । मुख संयोजना – मुँह में नीवाला ड़ाले उपर से प्रवाही या दूसरी चीज लेकर यानि मंड़क आदि मुँह में ले फिर गुड़ आदि मुँह में ले ऐसे दो चीज मिलाकर खाए ।

संयोजना से होनेवाले दोष –संयोजना रस की आसक्ति करनेवाली है आत्मा ज्ञानावरणीय आदि कर्म बँध करता है । संसार बढ़ता है । भवान्तर में जीव को अशाता होती है । अनन्तकाल तक वेदन योग्य अशुभ कर्म बँधता है । इसलिए साधु ने बाह्य या अभ्यंतर संयोजना नहीं करनी चाहिए । अपवाद – हरएक संघाट्टक को गोचरी ज्यादा आ गई हो, खाने के बाद भी आहार बचा हो तो परठवना न पड़े इसलिए दो द्रव्य मिलाकर खाए तो दोष नहीं है । ग्लान के लिए द्रव्य संयोजना कर सकते हैं । राजपुत्रादि हो और अकेला आहार गले से उतर न रहा हो तो संयोजना करे । नवदीक्षित हो परिणत न हुआ हो तो संयोजना करे । या रोगादि के कारण से संयोजना करने में दोष नहीं है ।

सूत्र – ६८४-६९६

प्रमाण दोष जो आहार करने से ज्ञानाभ्यास वैयावच्च आदि करने में और संयम के व्यापार में उस दिन और दूसरे दिन और आहार खाने का समय न हो तब तक शारीरिक बल में हानि न पहुँचे उतना आहार प्रमाणसर कहलाता है । नाप से ज्यादा आहार खाने से प्रमाणातिरिक्त दोष बने और उससे संयम और शरीर को नुकसान हो सामान्य से पुरुष के लिए बत्तीस नीवाले आहार और स्त्री के लिए अठ्ठाईस नीवाले आहार नापसर है ।

कुक्कुटी – कुकड़ी के अंड़े जितना एक नीवाला गिने । कुक्कुटी दो प्रकार की । १. द्रव्य कुक्कुटी और २. भाव कुक्कुटी । द्रव्य कुक्कुटी – दो प्रकार से १. उदर कुक्कुटी, २. गल कुक्कुटी । उदरकुक्कुटी – जितना आहार लेने से पेट भरे उतना आहार । गल कुक्कुटी – पेट के लिए काफी आहार का बत्तीसवाँ हिस्सा या जितना

नीवाला मुँह में ड़ालने से मुँह विकृत न बने, उतना नीवाला या सरलता से मुँह में रख सके उतने आहार का नीवाला। भाव कुक्कुटी – जितना आहार खाने से (कम नहीं – ज्यादा भी नहीं) शरीर में जोश रहे, ज्ञान, दर्शन, चारित्र की वृद्धि हो उतना आहार, उसका बत्तीसवा हिस्सा एक नीवाला कहलाता है ।

बत्तीस नीवाले में एक, दो, तीन नीवाले कम करने से यावत् सोलह नीवाले प्रमाण आहार करे यावत् उसमें से भी कत करनेसे आठ नीवाले जितना आहार करे । वो यात्रामात्र (गुझारे के लिए काफी) आहार कहलाता है ।

साधुओं को कैसा आहार खाना चाहिए ? जो हितकारी – द्रव्य से अविरुद्ध, प्रकृति को जचनेवाला और एषणीय –दोषरहित आहार करनेवाला, मिताहारी – प्रमाणसर बत्तीस नीवाले प्रमाण आहार करनेवाला, अल्पाहारी – भूख से कम आहार करनेवाले होते हैं, उनका वैद्य इलाज नहीं करते । यानि उनको बीमारी नहीं लगती ।

हितकारी और अहितकारी आहार का स्वरूप – दहीं के साथ तेल, दूध के साथ दहीं या काजी अहितकारी है । यानि शरीर को नुकसान करता है । अहितकारी आहार लेने से सारी बीमारी उत्पन्न होती है । दूध और दहीं और तेल या दहीं और तेल के साथ खाने से कोढ़ की बीमारी होती है, समान हिस्से में खाने से झहर समान बनता है । इसलिए अहितकारी आहार का त्याग करना और हितकारी आहार लेना चाहिए ।

मित्त आहार का स्वरूप – अपने उदर में छ हिस्सों की कल्पना करना । उसमें शर्दी, गर्मी और सामान्य काल की अपेक्षा से आहार लेना, उनकी समझ देने के लिए बताया है –

काल	पानी	भोजन	वायु
काफी शर्दी में	एक हिस्सा	चार हिस्से	एक हिस्सा
मध्यम शर्दी में	दो हिस्सा	तीन हिस्से	एक हिस्सा
मध्यम गर्मी में	दो हिस्सा	तीन हिस्से	एक हिस्सा
ज्यादा गर्मी में	तीन हिस्सा	दो हिस्से	एक हिस्सा

हंमेशा उदर का एक हिस्सा वायुप्रचार के लिए खाली रखना चाहिए । वो खाली न रहे तो शरीर में दर्द करे

जो साधु प्रकाम, निष्काम, प्राणीत, अतिबाहुक और अति बहुश – भक्तपान का आहार करे उसे प्रमाण दोष समझो । प्रकाम – घी आदि न रेलाते आहार के तैंतीस नीवाले से ज्यादा खाए । निकाम – घी आदि न रेलाते आहार के बत्तीस से ज्यादा नीवाले एक से ज्यादा खाए । प्रणीत – नीवाला लेने से उसमें से घी आदि नीकलता हो ऐसा आहार लेना । अतिबाहुक – अकरांतीया होकर खाना । अतिबहुश काफी लालच से अतृप्तता से दिन में तीन बार से ज्यादा आहार लेना । साधु को भूख से कम आहार खाना चाहिए । यदि ज्यादा आहार खाए तो आत्म विराधना, संयम विराधना, प्रवचन विराधना आदि दोष लगते हैं ।

सूत्र – ६९७-७०२

अंगार दोष और धूम्रदोष – जैसे अग्नि लकड़े को पूरी प्रकार जला देती है और अंगार बनाती है और आधा जलने से धुँआवाला करता है, ऐसे साधु आहार खाने से आहार की या आहार बनानेवाले की प्रशंसा करे तो उससे राग समान अग्नि से चारित्र समान लकड़े को अंगार समान बनाती है । और यदि उपयोग करते समय आहार की या आहार बनानेवाले की बूराई करे तो द्वेष समान अग्नि से चारित्र समान लकड़े धुँआवाले होते हैं ।

राग से आहार की प्रशंसा करते हुए खाए तो अंगार दोष लगता है । द्वेष से आहार की नींदा करते हुए खाए तो धूम्रदोष लगता है । इसलिए साधुने आहार खाते समय प्रशंसा या नींदा नहीं करनी चाहिए । आहार जैसा हो वैसा समभाव से राग-द्वेष किए बिना खाना चाहिए, वो भी कारण हो तो ले वरना न ले ।

सूत्र – ७०३-७१०

आहार करने के छह कारण हैं । इन छह कारण के अलावा आहार ले तो कारणातिरिक्त नामका दोष लगे क्षुधा वेदनीय दूर करने के लिए, वैयावच्च सेवा भक्ति करने के लिए, संयम पालन करने के लिए, शुभ ध्यान करने के लिए, प्राण टिकाए रखने के लिए, इर्यासमिति का पालन करने के लिए । इन छह कारण से साधु आहार खाए,

लेकिन शरीर का रूप या जबान के रस के लिए न खाए ।

क्षुधा का निवारण करने के लिए भूख जैसा कोई दर्द नहीं है, इसलिए भूख को दूर करने के लिए आहार खाए, इस शरीर में एक तिल के छिलके जितनी जगह ऐसी नहीं कि जो बाधा न दे । आहार रहित भूखे को सभी दुःख सान्निध्य करते हैं, यानि भूख लगने पर सभी दुःख आ जाए, इसलिए भूख का निवारण करने के लिए साधु आहार ले । वैयावच्च करने के लिए भूखा साधु अच्छी प्रकार से वैयावच्च न कर सके, इसलिए आचार्य, उपाध्याय, ग्लान, बाल, वृद्ध आदि साधु की वैयावच्च अच्छी प्रकार से कर सके उसके लिए साधु आहार खाए । संयम का पालन करने के लिए, भूखा साधु प्रत्युप्रेक्षणा प्रमार्जना आदि संयम का पालन न कर सके, इसलिए संयम का पालन करने के लिए साधु आहार ले ।

शुभ ध्यान करने के लिए – भूखा साधु स्वाध्याय आदि शुभध्यान – धर्मध्यान न कर सके, अभ्यास किए गए सूत्र – अर्थ का परावर्तन करने में असमर्थ बने, इसलिए धर्मध्यान की हानि हो । इसलिए शुभध्यान करने के लिए साधु आहार खाए । प्राण को टिकाए रखने के लिए – भूखे हो तो शरीर की शक्ति नष्ट हो, जिससे शरीर को टिकाए रखने के लिए साधु आहार खाए । इर्यासमिति का पालन करने के लिए भूखे हो तो इर्यासमिति का अच्छी प्रकार से पालन न हो सके । इर्यासमिति का पालन अच्छी प्रकार से हो सके इसके लिए साधु आहार खाए । इन छह कारण से साधु आहार खाए, लेकिन देह का विशिष्ट वर्ण आकृति बने, स्वर मधुर बने, कंठ की मधुरता बने और अच्छे-अच्छे माधुर्य आदि स्वाद के लिए आहार खाए । शरीर का रूप, रस के लिए आहार लेने से धर्म का प्रयोजन नहीं रहने से कारणातिरिक्त नाम का दोष लगता है ।

छह कारण से साधु आहार खाए वो दिखाया । अब छह कारण से साधु को आहार नहीं लेना चाहिए यानि उसे उपवास कहते हैं ।

आतंक बुखार हो या अजीर्ण आदि हुआ हो तब आहार न ले । क्योंकि वायु, श्रम, क्रोध, शोक, काम और क्षत से उत्पन्न न होनेवाले बुखार में लंघन उपवास करने से देह को शुद्धि हो जाती है । उपसर्ग – रिश्तेदार दीआ छुड़ाने के लिए आए हो, तब आहार न खाए । आहार न लेने से रिश्तेदारों को ऐसा लगे कि, आहार नहीं लेंगे तो मर जाएंगे । इसलिए रिश्तेदार दीक्षा न छुड़ाए । राजा कोपायमान हुआ हो तो न खाए, या देव, मानव या तीर्यंच सम्बन्धी उपसर्ग हुआ हो तो उपसर्ग सहने के लिए न खाए । ब्रह्मचर्य – ब्रह्मचर्य को बाधक मोह का उदय हुआ हो तो न खाए । भोजन का त्याग करने से मोहोदय शमन होता है ।

जीवदया – बारिस होती हो, बूँदे गिरती हो, सचित्त रज या धूम्मस आदि गिरता हो या संमूर्च्छिम मेढ़क आदि का उद्‌भव हो गया हो तो उन जीव की रक्षा के लिए खुद से उन जीव को विराधना न हो इसलिए उपाश्रय के बाहर नीकले । आहार न खाए यानि उपवास करे जिससे गोचरी पानी के लिए बाहर न जाना पड़े और अप्‌कायादि जीव की विराधना से बच शके । तप-तपस्या करने के लिए । (श्री महावीर स्वामीजी भगवंत के शासन में उत्कृष्ट छह महिने का उपवास का तप बताया है ।) उपवास से लेकर छह महिने के उपवास करने के लिए आहार न खाए। शरीर का त्याग करने के लिए – लम्बे अरसे तक चारित्र पालन किया, शिष्य को वाचना दी, कईं लोगों को दीक्षा दी, अंत में बुढ़ापे में 'सभी अनुष्ठान' में मरण-अनशन आराधना अच्छे हैं, इसलिए उसमें कोशीश करनी चाहिए । ऐसा समझकर आहार त्याग करनेवाले देह का त्याग करे । देह का त्याग करने के लिए आहार न ले ।

सूत्र – ७११-७१३

इस आहार की विधि जिस अनुसार सर्व भाव को देखनेवाले तीर्थंकर ने बताई है उस अनुसार मैंने समझ दी है । जिससे धर्मावशयक को हानि न पहुँचे ऐसा करना । शास्त्रोक्त विधि के अनुसार राग-द्वेष बिना यतनापूर्वक व्यवहार करनेवाला आत्मकल्याण की शुद्ध भावनावाले साधु का यतना करते हुए जो कुछ पृथ्वीकायादि की संघट्ट आदि विराधना हो तो वो विराधना भी निर्जरा को करनेवाली होती है । लेकिन अशुभ कर्म बंधन करनेवाली नहीं होती । क्योंकि जो किसी विराधना होती है, उसमें आत्मा का शुभ अध्यवसाय होने से अशुभ कर्म के बंधन के लिए

नहीं होती । लेकिन कर्म की निर्जरा करवाती है ।

४१/२ 'पिंडनिर्युक्ति' आगमसूत्र का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

પૂજ્યપાદ્ શ્રી આનંદ–ક્ષમા–લલિત–સુશીલ–સુધર્મસાગર ગુરુભ્યો નમઃ

४१/२

पिंडनिर्युक्ति

आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद

[अनुवादक एवं संपादक]

आगम दीवाकर मुनि दीपरत्नसागरजी

[M.Com. M.Ed. Ph.D. श्रुत महर्षि]

વેબ સાઈટ:– (1) www.jainelibrary.org (2) deepratnasagar.in

ઈમેલ એડ્રેસ:- jainmunideepratnasagar@gmail.com મોબાઈલ 09825967397